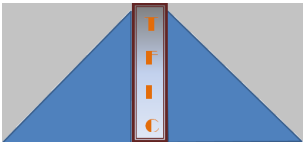

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

५५२
क्रम संख्या 228.02 मुख्त्या
काल नं०
खण्ड

"जियो और जीने दो"

अहिंसा और सत्य के सर्वोत्तम प्रचारक

श्री भगवान् महावीर

के प्रति

श्रद्धांजलियां

जैन मित्र मंडल

धर्मपुरा, देहली

श्री भगवान् महावीर का २५५३ वां जन्म दिवस

चैत्र शुक्ला १३, वीर निर्वाण सम्वत् २४०१

५ अप्रैल, १९५५

जैन मित्रमण्डल-ट्रैक्ट नं० १२८

प्रकार युद्धों से छुटकारा नहीं होता। यदि केसरे जरमनी को हरा दिया तो उससे भी भयङ्कर हिटलर उत्पन्न होजाता है। युद्ध से शत्रु नष्ट हो सकते हैं परन्तु शत्रुता नष्ट नहीं होती[1]।

कुछ लोगों का खयाल है कि ऐटामिक बम्बों तथा हैडरोजन बम्बों के भय से शान्ति की स्थापना हो सकती है। एक हैडरोजन बम्ब पर $ 2000000000[2] अर्थात् ($ 21/=£ 7/9/6= Rs. 100/[3]) लगभग १० अरब रुपया खर्च होता है और फिर भी रूस के प्रसिद्ध विचारक C. Tolstoy के शब्दों में "आग से आग को नहीं बुझाया जा सकता[4]"। प्रो० Albert-Einstein भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं "हिंसा को हिंसा से नहीं मिटाया जा सकता"[5]। अमेरिका के वैज्ञानिक Dr. James R Arnold के कथनानुसार—"जो भयानक हथियारों से दूसरों को मिटाना चाहते हैं, वे अपनी कब्र अपने हाथों से खोद रहे हैं[6]।

विश्व के सर्वमान्य राजनीतिज्ञ भारत के प्रधानमन्त्री पं० नेहरु के शब्दों में इस समय सारा संसार बड़ी विषम परिस्थिति से गुज़र रहा है और इस से बचाव का केवल एकमात्र उपाय अहिंसा है"[7]।

१ "We defeated Kaisar and got Hitler. Following the defeat of Hitler we may get a worse Hitler. No REAL PEACE *unless we destroy the soil & seeds out of which Kaisar and Hitler grow*"
—Empire by Lovis Fischer. p. 11.

२ Dr. James R Arnold: Indian Review. (1950) p. 783

३ Indian Trade Bulletin Govt. of India (15-8-50) p. 75

४ War and Peace by C. Tolstoy.

५ Einstein's Massage to the World Pacifist Meeting.

६ Those who are willing to use weapons for the killing, must be prepared in return to accept suicide in the bargain". —Indian Review (1950) P. 783.

७ The world is passing through a very critical phase. The great powers are poised against one another, armed with the '*most destructive weapons of all ages*'. AHINSA ALONE can solve the problems.
—Hindustan Times, New Delhi (April 20, 1954.) P.7.

अपनी जमात में प्रथम रहने के कारण पुरस्कार[1] तथा प्रशंसा पत्र[2] दोनों प्राप्त करते रहे हैं। इनकी योग्यता का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि दसवीं जमात के बाद केवल छः महीने में माल और फौजदारी की दर्जनों मोटी-मोटी क़ानूनी पुस्तकों का तैयारी करके इलाहाबाद हाई कोर्ट से मुख्तारकारी[3] और रेवेन्यू एजेण्टी[4] दोनों इम्तहान पास करके सहारनपुर में माल और फौजदारी में प्रेक्टिस आरम्भ कर दी[5] और थोड़े समय में ही कलक्टरेट बार सहारनपुर के प्रसिद्ध मेम्बरों में गिने जाने लगे। अपनी सर्वप्रियता के कारण आप डिस्ट्रिक्ट बोर्ड टीचर्स ऐसोसियेशन के प्रधान, सरसावा टाउन एरिया के उपप्रधान, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सहारनपुर के मेम्बर व डिस्ट्रिक्ट गजट सहारनपुर के सब एडीटर रहे और मेरठ कॉलेज के लाइफ मेम्बर हैं।

आपके हृदय में देश-सेवा और मुल्क का कितना दर्द है, वह आपके ड्रामा 'हमदर्द ए मुल्क' से भलीभाँति प्रकट है, जो आपने

Govt. prize awarded to Digamber Das Jain for Scout Signalling on Nov. 7, 1925. —Principal B. D. High School Ambala.

१ Prize awarded to Digamber Das for standing First in 9th S.L.C. Class on Nov. 7, 1925.

—Thakurdas Sharma, For Principal B. D. H. School, Ambala.

२ This Certificate of Commendation is granted to Digamber Das Jain S/o L. Hem Chand, a student of X Class of the School for standing FIRST in the S. L. C. First Term Examination in 1925-26. —Chiranji Lal Principal. 15/8/1925.

३ Certificate No. 4170 of Apri 11, 1927 of the Registrar. High Court of Judicature at Allahabad.—"I do hereby certify that Digamber Das Jain has passed the Examination qualifying him for admission as a Mukhtar in 1927.

४ Certificate No. 3694 of April 11, 1927 of the Registrar High Court of Judicature at Allahabad.—"I do hereby certify that Digamber Das Jain has passed the Examination qualifying him for admission as a Revenue Agent in 1927.

५ Enrolment order of May 27,1927 of the Distt Judge,Saharanpur.

स्कन्धपुराण में श्री जिनेन्द्र-भक्ति

अरिहंतप्रसादेन सर्वत्र कुशलं मम ।
सा जिह्वा या जिनस्तौति तौ करौ यौ जिनार्चनौ ॥ ७ ॥

सादृष्टिर्या जिने लीना तन्मनो यज्जिनेरतम् ।
तया सर्वत्र कर्तव्या जीवात्मा पूज्यते सदा ॥ ८ ॥

—स्कन्ध पुराण[1], तीसरा खण्ड, (धर्म खण्ड) अ० ३८.

श्री 'अर्हन्त देव'[2] के प्रसाद से मेरे हर समय कुशल है। वह ही जबान है जिससे जिनेन्द्रदेव[3] का स्तोत्र पढ़ा जाय और वह ही हाथ है जिन से जिनेन्द्रदेव की पूजा की जाय, वह ही दृष्टि है जो जिनेन्द्र के दर्शनों में तल्लीन हो और वही मन है जो जिनेन्द्र में रत हो।

---

१. स्कन्ध पुराण में अहिंसा धर्म की प्रशंसा, जैन तीर्थंकरों का वर्णन और जैन व्रतादि पालने की शिक्षा के अनेक श्लोक जानने के लिए देखिए "जैन धर्म और हिन्दू धर्म" खण्ड ३।

२. See foot-note No 1. P 45.

३. i जिनेन्द्र = जिन (जीतने वाला) इन्द्र (राजा) कर्म रूपी शत्रुओं तथा मन को जीतने वालों का सम्राट।

ii जिन, जिनेन्द्र, जिनेश्वर, सर्वज्ञ, सब का अर्थ अर्हन्त अथवा जैनियों के पूज्य देव जानने के लिए फुटनोट पृष्ठ ४५ पर देखिये।

iii जिन तथा जिनेन्द्र का अर्थ अधिक विशेषता से जानने के लिए देखिए "श्री रामचन्द्र जी की जिनेन्द्र भक्ति" पृ० ५०।

दया[1] (Ahinsa) समता[2], अपरिग्रह[3] आदि धर्मों की साधना की थी[4]।

यह निश्चय हो रहा है कि हजरत ईसा जब १३ वर्ष के हुये और उनके घर वालों ने उनके विवाह के लिये मजबूर किया तो वह घर छोड़कर कुछ सौदागरों के साथ सिन्ध के रास्ते भारत में चले आये थे[5]। वह जन्म से ही बड़े विचारक, सत्य के खोजी और सांसारिक भोग-विलासों से उदासीन थे[6]। भारत में आकर वह बहुत दिनों तक जैन साधुओं के साथ रहे,[7] प्रभु ईसा ने अपने आचार-विचार की मूल शिक्षा जैन साधुओं से प्राप्त की थी[8]।

महात्मा ईसा ने जिस पैलस्टाइन में जाकर ४० दिन के उपवास द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किया था। वह प्रसिद्ध यहूदी मि०

---

१. a.—"What ever you do not wish your neighbour to do unto you, don't unto him.

b—"Thou shalt not build thy happiness on the misery of another'—Christ.

२. "Towards your fellow creature be not hostile. All beings hate pain, therefore don't kill them."—Christ.

३. प्रभु ईसा मसीह का कहना है कि सूई के नाके से ऊँट का निकल जाना मुमकिन है परन्तु अधिक परिग्रह की इच्छा रखने वालों का आत्मिक कल्याण होना मुमकिन नहीं।

४. "इतिहास में भगवान् महावीर का स्थान" पृ० १६।

५. पं० सुन्दरलाल जी : हजरत ईसा और ईसाई धर्म, पृ० २२।

६. पं० बलभद्र जी सम्पादक जैन संदेश' आगरा।

७. पं० सुन्दरलाल जी : हजरत ईसा और ईसाई धर्म, पृ० १६२।

८. इतिहास में भगवान् महावीर का स्थान, पृ० १६।

उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्त वर्ण हो गया था। उसी समय से उस नदी का नाम चर्मवती प्रसिद्ध है। पशुवध से स्वर्ग मिलता है इस विषय में उक्त कथा साक्षी है, परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण-धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय जैनधर्म को है। इस रीति से ब्राह्मणधर्म अथवा हिन्दू-धर्म को जैन धर्म[1] ने अहिंसा धर्म बनाया है। यज्ञ-यागादि कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे क्षत्री और वैश्यों को यह अधिकार नहीं था और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे बनते थे। इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करने की चारों वर्णों में एक सी छूट न थी। जैन-धर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।

मुसलमानों का शक, इसाईयों का शक, विक्रम शक, इसी प्रकार जैन धर्म में महावीर स्वामी का शक (सन्) चलता है। शक चलाने की कल्पना जैनी भाईयों ने ही उठाई थी।

आजकल यज्ञों में पशुहिंसा नहीं होती। ब्राह्मण और हिन्दु-धर्म मे मांस-भक्षण, और मदिरा-पान बन्द हो गया सो यह भी जैनधर्म का ही प्रताप है। जैन-धर्म की छाप ब्राह्मण- धर्मपर पड़ी।

---

१. जैन-धर्म का महत्व (सूरत) भाग १ पृ ८१-९२।

जहरीले जानवरों को जीने का हक

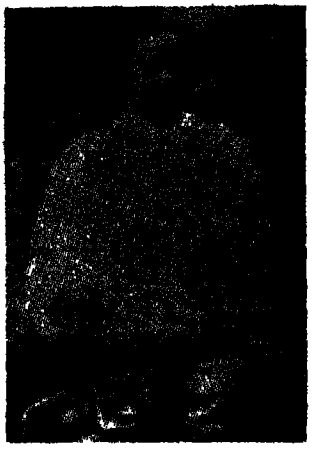

भगवान् देव आत्मा जी महाराज

किसी जहरीले जानवर सांप, बिच्छु वगैरह को देख कर फौरन उसको मारने के लिए तैयार हो जाना कभी ठीक नहीं है जब कोई जहरीला जानवर तुम पर हमला करे और जान की हिफाजत किसी और तरीके से न हो सकती हो तो जान की हिफाजत की खातिर उसे मारना मुनासिब हो सकता है वरना नहीं। यह जमीन केवल तुम्हारी नहीं है सांप, बिच्छू आदि भी कभी २ इसपर से गुजर सकते हैं। इस लिये उन को शान्ति से गुजर जाने दो या डरा कर अपनी जगह से भगा दो। याद रक्खो साँप आदि को भी तब तक जीने का हक हासिल है जब तक वह स्वयं खुद दूसरे की जान पर हमला करे।

—भ० देवआत्मा की जीवन कथा भाग २ पृ० ६७

जैन इतिहास की आवश्यकता

प्रो० श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी

प्राचीन भारतीय इतिहास का जो पता आज-कल चल रहा है, उसमें जैन राजाओं राजमन्त्रियों और सैनापतियों आदि के जबरदस्त कारनामे मिलते जा रहे हैं अब ऐतिहासिक विद्वानों के लिये जैन इतिहास की जरूरत पहिले से बहुत बढ़ गई है।

—अहिंसा और कायरता पृ० २८

जैन धर्म से विरोध उचित नहीं

मुख्योपाध्याय श्री वरदाकान्त एम० ए०

हमारे देश में जैन धर्म के सम्बन्ध में बहुत से भ्रम फैले हुये हैं। साधारण लोग जैन धर्म को सामान्य जानते हैं कुछ इसको नास्तिक समझते हैं, अनेकों की धारणा में जैन धर्म अत्यन्त अशुचि तथा नग्न परमात्मा पूजक है। कुछ शङ्कराचार्य के समय जैन धर्म का आरम्भ होना स्वीकार करते हैं, कुछ महावीर स्वामी अथवा पार्श्वनाथ को जैन धर्म का प्रवर्तक बताते हैं, कुछ जैनधर्म की अहिंसा पर कायरता का इलजाम लगाते हैं, कुछ इसको हिन्दू अथवा बौद्ध धर्म की शाखा समझते हैं कुछ कहते हैं, कि यदि मस्त हाथी भी तुम पर आक्रमण करे तो भी प्राण रक्षा के लिये जैन मन्दिरों में प्रवेश मत करो[१]। कुछ वेदों और पुराणों को स्वीकार न करने तथा ईश्वर को कर्ता धर्ता और कर्मों का फल देने वाला न मानने के कारण जैनियों से विरोध करते रहते हैं।

Prof:- Weber ने History of Indian Literature में स्वीकार किया है "जैनधर्म सम्बंधी जो कुछ हमारा ज्ञान है वह सब ब्राह्मण शास्त्रों से ज्ञात हुआ है।" सब पश्चिमी विद्वान् सरल स्वभाव से अपनी अज्ञानता प्रकाशित करते रहे हैं। इस लिये उनके मत की परीक्षा की कुछ आवश्यकता नहीं है।

शंकराचार्य के समय जैन धर्म का चालू होना इस लिए सत्य

---

१. न पठेद्यावनी भाषां प्राणैः कण्ठ शतैरपि।
दस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जिनमंदिरम्॥
अर्थात्—प्राण भी जाते हों तो भी म्लेच्छों की भाषा न पढ़ो और हाथी से पीड़ित होने पर भी जैन मन्दिर में न जाओ।

नहीं, क्योंकि यह स्वयं जैन धर्म को अति प्राचीन काल से प्रचलित होना स्वीकार करते हैं[1]।

ऐतिहासिक विद्वान् Lethbridge and Mounstrust Elphinstone का कथन कि छठी शताब्दी से प्रचलित है, इस लिए सत्य नहीं कि छठी शताब्दी में होने वाले भगवान् महावीर जैन धर्म के प्रथम प्रचारक[2] नहीं थे, चौबीसवें तीर्थंकर थे। जैन-धर्म उनसे बहुत पहले दिगम्बर ऋषि ऋषभदेव ने स्थापित किया था[3]।

Wilson Lesson, Bärth and Weber आदि विद्वानों का कहना कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा है, इस लिए सत्य नहीं कि कोई भी हिन्दू ग्रन्थ ऐसा नहीं कहता। हनुमान नाटक में तो जैन धर्म बौद्ध धर्म को भिन्न भिन्न सम्प्रदाय बताये हैं[4]। श्री मद्भागवत् में बुद्ध को बौद्ध धर्म का तथा ऋषभदेव को जैन-धर्म का प्रथम प्रचारक कहा है। महर्षि व्यास जी ने महाभारत[5] में जैन और बौद्ध धर्म को दो स्वतंत्र समुदाय बताया है। जब महात्मा बुद्ध स्वयं महावीर स्वामी को जैन धर्म का चौबीसवां

---

१. वेदान्त सूत्र ३३।

२. जैन धर्म की प्राचीनता खण्ड नं० ३।

३. जैन धर्म के संस्थापक श्री ऋषभदेव खण्ड ३।

४. यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैपायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥ ३॥
—हनुमान नाटक र लक्ष्मी वैंकटेश्वर प्रेस अ० १

५. महाभारत, अश्वमेघपर्व, अनुगीति ४६, अध्याय २, १२ श्लोक।

तीर्थंकर स्वीकार करते हैं, तो जैन धर्म बौद्ध धर्म से अवश्य ही बहुत प्राचीन है और बौद्ध धर्म की शाखा का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता[1]।

जैन धर्म हिन्दू धर्म से बिल्कुल स्वतंत्र है, उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं है[2], नास्तिक नहीं है[3] नग्नता तो वीरताका चिन्ह है[4], अहिंसा वीरों का धर्म है[5]। जैन धर्म के पालने वाले बड़े बड़े सम्राट और योद्धा हुये हैं[6]।

हम कौन हैं? कहाँ से आये? कहां जायेंगे? जगत क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में जैन धर्म कहता है कि आत्मा, कर्म और जगत अनन्त है[7]। इनका कोई बनाने वाला नहीं[8]। आत्मा अपने कर्मफल का भोग करता है, हमारी उन्नति, हमारे कार्यों पर ही निर्भर है। इस लिए जैन धर्म ईश्वर को कर्मानुयायी, पुरस्कार और शान्तिदाता स्वीकार नहीं करता[9]।

---

१. महात्मा बुद्ध पर वीर प्रभाव, खंड २।

२ जैन धर्म और हिन्दु धर्म, खंड ३।

३. जैन धर्म नास्तिक नहीं, खण्ड १।

४. वाइस परिषयजय, खण्ड २।

५. जैन धर्म वीरों का धर्म है, खंड ३।

६ जैन सम्राट, खण्ड ३।

७-८. भ० महवीर का धर्मोपदेश खण्ड २।

९. लेखक का पूरा लेख, "जैन धर्म माहात्म्य" (सूरत) भाग १ पृ. १११ से १२५।

जैन धर्म इतिहास का खजाना

डा. जे. जी. बुल्हर, सी. आई. ई., एल-एल डी.

जैन धर्म के प्राचीन स्मारकों से भारतवर्ष के
प्राचीन इतिहास की बहुत जरूरी और
उत्तम सामग्री प्राप्त होती है।
जैन धर्म प्राचीन सामग्री का
भरपूर खजाना है।

—भारतवर्ष के प्राचीन जमाने के हालात, पृ० ३०७।

जैनधर्म गुणों का भण्डार

प्रो० डा० मैक्समूलर एम० ए०, पी० एच० डी०

जैन धर्म अनन्तानन्त गुणों का भण्डार है जिस में
बहुत ही उच्चकोटि का तत्व-फिलॉस्फी भरा हुआ
है। ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक
तथा भारत के प्राचीन कथन जानने
की इच्छा रखने वाले विद्वानों
के लिये जैन-धर्म का
स्वाध्याय बहुत
लाभदायक
है।

—इन्साइलो पीड़िया

जैन इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है

रेवरेन्ज जे० स्टीवेन्सन महोदय

भारतवर्ष का अधःपतन जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैन धर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

—जैन धर्म पर लो० तिलक और प्रसिद्ध विद्वानों का अभिमत, पृ० २७।

जैनधर्म से पृथ्वी स्वर्ग हो सकती है

डा० चारो लोटा क्रौज संस्कृत प्रोफैसर वर्लिन यूनिवर्सिटी

जैन धर्म के सिद्धान्तों पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि सब जगह उनका पालन किया जाये तो वह इस पृथ्वी को स्वर्ग बना देंगे। जहां तहां शान्ति और आनन्द ही आनन्द होगा।

—जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन अन्तिम पृष्ठ।

यूरपियन फ्लॉसफर जैनधर्म की सचाई पर नतमस्तक हैं

Prof:- Dr. Von Helmuth Von Glasenapp, Univercity Berlin.

मैंने जैनधर्म को क्यों पसन्द किया? जैन धर्म हमें यह सिखाता है कि अपनी आत्मा को संसार के झंझटों से निकाल कर हमेशा की नजात किस प्रकार हासिल की जावे। जैन असूलों ने मेरे हृदय को जीत लिया और मैंने जैन फलॉस्फी का स्वाध्याय शुरू कर दिया है। आजकल यूरपियन फलासर जैन फलास्फी के क़ायल हो रहे हैं, और जैनधर्म की सचाई के आगे मस्तक झुका रहे हैं।

—रोजाना तेज देहली २०-१-१९२८।

जैन धर्म की प्राचीनता

डा० फुहरर

जैनियो के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गये हैं। भगवद्गीता के परिशिष्ट में श्रीयुत् वरवे इसे स्वीकार करते हैं कि नेमिनाथ श्री कृष्ण के भाई थे। जब कि जैनियों के २२वें तीर्थंकर श्रीकृष्ण के समकालीन थे तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्ण के कितने वर्ष पहले होने चाहियें? यह पाठक अनुमान कर सकते हैं।

एपीग्रेफिका इंडिका व्हाल्यूम २
पृष्ठ २०६–२०७।

डा० ऐन ए० बी० संट

यूरपियन ऐतिहासिक विद्वानों ने जैन धर्म का भली प्रकार स्वाध्याय नहीं किया इस लिये उन्होंने महावीर स्वामी को जैन धर्म का स्थापक कहा है। हालाँकि यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुकी है कि वे अन्तिम चौवीसवें तीर्थंकर थे। इनसे पहले अन्य तेईस तीर्थंकर हुये जिन्होंने अपने-अपने समय में जैन धर्म का प्रचार किया।

—जैन गजट भा० १०
पृ ४

जैन धर्म ही सच्चा और आदि धर्म है

मि० आवे जे० ए० डवाई मिशनरी

निःसन्देह जैन धर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यही मनुष्य मात्र का आदि धर्म है।

—डिस्क्रिप्सन ऑफ दी करैक्टर मैनर्ज एण्ड कस्टम्ज ऑफ़ दी पीपिल ऑफ़ इण्डिया।

अलौकिक महापुरुष भगवान महावीर

डा० अनेस्ट लायमेन जर्मनी

भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान्, आत्म-विकास में अग्रसर दर्शनकार और उस समय की प्रचलित सभी विद्याओं में पारङ्गत थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से उन विद्याओं को रचनात्मक रूप देकर जन समूह के समक्ष उपस्थित किया था। छः द्रव्य धर्मास्ति-काय (Fulcrum of Motion) अधर्मास्तिकाय (Fulcrum of Stationariness) काल (Time) आकाश (Space) पुद्गल (Matter) और जीव (Jiva) और उनका स्वरूप तत्व विद्या (Ontology) विश्वविद्या (Kosomology) दृश्य और अदृश्य जीवों का स्वरूप जीवविद्या (Biology) बताया। चैतन्य रूप आत्मा का उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकासस्वरूप मानस शास्त्र (Psychology) आदि विद्याओं को उन्होंने रचनात्मक रूप देकर जनता के सम्मुख उपस्थित किया। इस प्रकार वीर केवल साधु अथवा तपस्वी ही नहीं थे बल्कि वे प्रकृति के अभ्यासक थे और उन्होंने विद्वत्तापूर्ण निर्णय दिया।

—भगवान् महावीर का आदर्श जीवन पृष्ठ १३-१४।

जैन धर्म की विशेषता

जर्मनी के महान् विद्वान् डा० जोन्ह सहर्टेल एम० ए०, पी. एच.डी.

मैं अपने देशवासियों को दिखलाऊँगा कि कैसे उत्तम तत्व और विचार जैनधर्म में हैं। जैन साहित्य बौद्धों की अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना २ अधिक जैनधम व जैन साहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूँ, उतना उतना ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ। —जैनधर्म प्रकाश (सूरत) पृ० ब।

भगवान् महावीर के समय का भारत

प्रज्ञाचक्षु पं० गोविन्दराय जी काव्यतीर्थ

भगवान् महावीर के समय में भारतवर्ष कई स्वतन्त्र राज्यों में बँटा हुआ था जिनमें कुछ गणतन्त्र राज्य थे तो कुछ राजतन्त्र। एक भी ऐसा प्रबल सम्राट न था जिसकी छत्र छाया में समस्त भारत रहा हो[1]। उस समय दक्षिण भारत का शासन वीर चूड़ामणि जीवन्धर करते थे, जो अपने विद्यार्थी जीवन से ही जैन धर्म के अनुयायी और प्रचारक थे[2]। इनके गुरु आर्यानन्दी भी जैनधर्मानुयायी थे[3]। जीवन्धर का समस्त जीवन-वृत्तान्त जैन साहित्य में वर्णित है[4]।

मगध देश का शासन महाराजा श्रेणिक बिम्बसार के हाथों में था, जो कुमारावस्था में बौद्ध थे, परन्तु अपनी पटरानी चेलना के प्रभाव से जैनधर्मानुयायी हो गये थे[5]। इनके दोनों पुत्र अभयकुमार[6] और वारीशयन[7] जैन मुनि होगये थे।

सिन्धुदेश अर्थात् गङ्गापार में दो राज्य थे। एक राज्य की राजधानी विशाली थी। जहां के स्वामी महाराजा चेटक थे, जो तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के तीर्थ के जैन साधुओं के प्रभाव से बड़े पक्के जैनी थे। उन्होंने यहां तक की प्रतिज्ञा कर रखी थी कि अपनी पुत्रियों का विवाह जैनधर्मावलम्बियों से ही करूंगा।

---

१. वीर देहली, १७ अप्रैल सन् १९४८ पृ० ८।
२. 'महाराजा जीवन्धर पर वीर प्रभाव' खण्ड २ ।
३-४. ऊपर का फुटनोट नं० १ ।
५ 'महाराजा श्रेणिक और जैन धर्म' खण्ड २ ।
६. 'राजकुमार अभयकुमार पर वीर प्रभाव' खण्ड २ ।
७. 'राजकुमार वारीशयन पर वीर प्रभाव' खण्ड २ ।

विदेह की दूसरी राजधानी का नाम वरण तिलका था। जिसके नरेश सम्राट जीवन्धर के नाना गोविन्दराज थे[1]।

उत्तर कौशल अर्थात् अवध के राजा प्रसेनजित थे। जिनकी राजधानी श्रावस्ती थी। जिन्होंने बौद्ध धर्म को छोड़ कर जैनधर्म अंगीकार कर लिया था[2]।

प्रयाग के आसपास की भूमि वत्सदेश कहलाती थी। इसका राजा शतानीक[3] था, इसकी राजधानी कौशुम्बी थी। यह राजा महावीर स्वामी से भी पहले जैनी था। इसकी रानी मृगावती विशाली के जैन सम्राट महाराजा चेटक की पुत्री थी। इस लिये महाराजा शतानीक भगवान महावीर के मावसा थे और उनके धर्मोपदेश के प्रभाव से यह राजपाट त्याग कर जैन साधु हो गये थे[4]।

कुण्डग्राम के स्वामी राजा सिद्धार्थ थे, जो भगवान महावीर के पिता थे। ये भी वीर, महाप्रतापी और जैनी थे। इसी लिये महाराजा चेटक ने अपनी राजकुमारी त्रिशलादेवी का विवाह इनके साथ किया था।

अवन्ति देश अर्थात् मालवा राज्य की राजधानी उज्जैन थी। इसका राजा प्रद्योत था, जो जैनी था। इसकी वीरता का कालिदास ने भी अपने मेघदूत में उल्लेख किया है[5]:—

"प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जन्हे"।

दर्शाण देश अर्थात् पूर्वी मालवा का राजा दशरथ था। इसका वंश सूर्य और धर्म जैन था[6], इसकी राजधानी हेरकच्छ थी, जैनधर्मी

१-२ वीर, देहली, १७ अप्रैल १९४८, पृ० ८।

३ महाराजा शतानीक और उदयन चंद्रवंशी थे। इनके अस्तित्व का समर्थन वैष्णव धर्म का भागवत भी करता है। जिसके अनुसार इनकी वंशावली वीर देहली (१७-४-४८) के पृष्ठ ८ पर देखिये।

४-६ ऊपर का फुटनोट नं० १-२।

होने के कारण महाराजा चेटक ने अपनी तीसरी राजकुमारी सुप्रभा का विवाह इनके साथ किया था[1]।

कच्छ अर्थात् पश्चिमी काठियावाड़ का राजा उदयन[2] था। इस की राजधानी रोरूकनगर थी। राजा चेटक की चौथी पुत्री प्रभावती इनके साथ ब्याही थी। महाराजा उदयन भी जैनी था[3]।

गाँधार अर्थात् कन्धार का राजा सात्यक था। यह भी जैन-धर्मानुयायी था। महाराजा चेटक की पांचवीं राजकन्या ज्येष्ठा की सगाई इनके साथ हुई थी, परन्तु विवाह न हो सका, क्योंकि सात्यक राजपाट को त्याग कर जैन साधु हो गया था[4]।

दक्षिणी केरल का राजा उस समय मृगाङ्क था और हंसद्वीप का राजा रत्नचूल था। कालिंग देश (उड़ीसा) का राजा धर्मघोष था। ये तीनों सम्राट जैनधर्मी थे[5]। धर्मघोष पर तो जैनधर्म का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि राजपाट त्याग कर वह जैन मुनि हो गया था[6]।

अङ्गदेश अर्थात् भागलपुर का राजा अजातशत्रु तथा पश्चिमी भारत सिन्ध का राजा मिलिन्द व मध्य भारत का राजा दृढ़मित्र था जो जैनसम्राट श्री जीवन्धर का ससुर था[7]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् महावीर के अनुशासन के प्रभाव से उस समय जैन धर्म अतिशय उन्नत रूप में था[8]।

१-२ फुटनोट नं० ३ पृष्ठ ११४।

३. 'महाराजा उदयन पर वीर प्रभाव' खण्ड २।

४-८. वीर, देहली, १७-४-४८, पृ० ८।

जैनधर्म नास्तिक नहीं है

रा० रा० श्री वासुदेव गोविंद आपटे बी० ए०

★

शंकराचार्य[1] ने जैनधर्म को नास्तिक कहा है कुछ और लेखक भी इसे नास्तिक समझते हैं लेकिन यह आत्मा, कर्म और सृष्टि को नित्य मानता है[2]। ईश्वर की मौजूदगी को स्वीकार करता है और कहता है कि ईश्वर तो सर्वज्ञ, नित्य और मङ्गलस्वरूप है। आत्माकर्म या सृष्टि के उत्पन्न करने या नाश करने वाला नहीं है[3]। और न ही हमारी पूजा, भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर हम पर विशेष कृपा करेगा[4]। हमें कर्म अनुसार स्वयं फल मिलता है[5]। ईश्वर को कर्ता, या कर्मों का फल देने वाला न मानने के कारण यदि हम जैनियों को नास्तिक कहेंगे तो—

---

१. (क) जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन-सिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है तब से मुझे विश्वास हुआ कि जैन सिद्धान्त में बहुत कुछ है, जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नहीं समझा। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि वे जैनधर्म को उसके असली ग्रन्थों से जानने का कष्ट उठाते तो उन्हें जैनधर्म से विरोध करने की कोई बात न मिलती।

—डा० गङ्गानाथ झा: जैनदर्शन तिथि १६ दिसम्बर १९३५ पृ० १८१।

(ख) बड़े बड़े नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैन मत खंडन किया है, वह ऐसा किया है जिसे सुन, देखकर हंसी आती है। महामहोपाध्याय स्वामी राममिश्र, जैनधर्म महत्व [सूरत] भा० १, पृ० १५३।

२-३. भ० महावीर का धर्मोपदेश, खंड २।

४. 'अर्हन्त भक्ति' खंड २।

५. 'कर्मवाद' खंड २।

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्म फलसंयोगं स्वभावस्तुप्रवर्तते ।।
नादत्ते कस्यचित्पापं न कस्य सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः[1] ।।"

—श्रीकृष्ण जीः श्रीमद्भागवद्गीता ।

ऐसा कहने वाले श्री कृष्ण जी को भी नास्तिकों में गिनना पड़ेगा । आस्तिक और नास्तिक यह शब्द ईश्वर के अस्तित्व-सम्बन्ध में व कर्तृत्वसम्बन्ध में न जोड़कर पाणिनीय ऋषि के सूत्रानुसार—

"परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः परलोको नास्तीती मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः[2] ।"

श्रद्धा करें तो भी जैनी नास्तिक नहीं हैं । जैनी परलोक स्वर्ग, नर्क और मृत्यु को मानते हैं इस लिये भी जैनियों को नास्तिक कहना उचित नहीं है[3] । यदि वेदों को प्रमाण न मानने के कारण जैनियों को नास्तिक कहो तो क्रिश्चन, मुसलमान, बुद्ध आदि भी 'नास्तिक' की कोटि में आ जायेंगे । चाहे आस्तिक व नास्तिक का

---

१. परमेश्वर जगत का कर्ता या कर्मों का उत्पन्न करने वाला नहीं है । कर्मों के फल की योजना भी नहीं करता । स्वभाव से सब होते हैं । परमेश्वर किसी का पाप या पुण्य भी नहीं लेता । अज्ञान के द्वारा ज्ञान पर पर्दा पड़ जाने से प्राणी मात्र मोह में पड़ जाता है ।

२. परलोक है ऐसी जिसकी मान्यता है वह आस्तिक है । परलोक नहीं है. ऐसी जिसकी मति है वह नास्तिक है ।

३. (i) 'दैष्टिकास्तिक नास्तिकः'—शाकटायनः वैयाकरण ३-२-६१
(ii) 'अस्ति परलोकादि मतिरस्य आस्तिकः तद्विपरीतो नास्तिकः'
—अभयचन्द्र सूरि
(iii) 'अस्ति नास्तिदिष्टं मतिः' —पाणिनीय व्याकरण ४-४-६०.

कैसा भी अर्थ[1] ग्रहण करें, जैनियों को नास्तिक सिद्ध नहीं किया जा सकता[2]।

---

१. निम्नलिखित प्रसिद्ध ग्रन्थों से सिद्ध है कि नास्तिक व आस्तिक का चाहे जो अर्थ लें जैनी नास्तिक नहीं हैं:—

(क) शाकटायन व्याकरण, ६-२-६१.

(ख) आचार्य पाणिनीयः व्याकरण, ४-४-६०.

(ग) हेमचन्द्राचार्य शब्दानुशासन, ६-४-६६.

(घ) शब्दतोममहानिधि कोष (Dictionary) पृ० १८५.

(ङ) अविधान चिन्तामणि, कांड ३, श्लोक ५२६।

(च) प्रोफैसर हीरालाल कौशलः जैन प्रचारक, वर्ष ३२ अङ्क ६, पृ० २-४.

२. (i) Jainism is accused of being atheistic, but this is not so, because Jainism believe in Godhead and innumerable Gods.

—Prof. Dr M. Hafiz Syed: V O.A, Vol. III P. 9.

(ii) "Those who believe in a creator some times look upon Jainism as an atheistic religion but Jainism can not be so called as it does not deny the existence of God."—Mr. Herbert Warren:

—Digamber Jain, (Surat) Vol. IX P. 48-58

(iii) For further details see:—

(a) Jainism is not atheism, priced -/4/- published by Digamber Jain Parishad. Dariba Kalan Delhi.

(b) जैन धर्म महत्व (सूरत) भा० १ पृ० ५८-६१.

(c) Jain Parchark (Jain Orphanage, Darya Gang. Delhi) Vol. XXXII. Part: IX P. 3-4.

जैन धर्म और विज्ञान

Thirthankaras were professors of the Spiritual Science, which enables men to become God.

—What is Jainism ? P, 48.

श्री पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर, न्यायतीर्थ

आजकल दुनिया में विज्ञान (Science) का नाम बहुत सुना जाता है इसने ही धर्म के नाम पर प्रचलित बहुत से ढोंगों की कलई खोली है, इसी कारण अनेक धर्म यह घोषणा करते हैं कि धर्म और विज्ञान में जबरदस्त विरोध है। जैनधम तो सर्वज्ञ, वीतराग, हितापदेशी जिनेन्द्र भगवान् का बताया हुआ वस्तुस्वभाव रूप है। इस लिये यह वैज्ञानिकों की खोजों का स्वागत करता है[1]।

भारत के बहुत से दार्शनिक शब्द (Sound) को आकाश का गुण बताते थे और उसे अमूर्तिक बता कर अनेक युक्तियों का जाल फैलाया करते थे, किन्तु जेनधर्माचार्यों ने शब्द को जड़ तथा मूर्तिमान् बताया था, आज विज्ञान ने ग्रामोफोन (Gramophone) रेडियो (Radi) आदि ध्वनि सम्बन्धी यन्त्रों के आधार पर

---

१. 'भ० महावीर का धर्म उपदेश,' खण्ड २।

शब्द को जैनधर्म के समान प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया[1]।

न्याय और वैशेषिक सिद्धान्तकार पृथ्वी, जल, वायु आदि को स्वतन्त्र मानते हैं किन्तु जैनाचार्यों ने एक पुद्गल नामक तत्व बताकर इनको उसकी अवस्था विशेष बताया है। विज्ञान ने हाइड्रोजिन आक्सीजन (Hydrogen Oxygen) नामक वायुओं का उचित मात्रा में मेल कर जल बनाया और जल का पृथक-करण करके उपर्युक्त हवाओं को स्पष्ट कर दिया। इसी प्रकार पृथ्वी अवस्थाधारी अनेक पदार्थों को जल और वायु रूप अवस्था में पहुँचाकर यह बताया है कि वास्तव में स्वतन्त्र तत्व नहीं है किन्तु पुद्गल (Matter) की विशेष अवस्थाएँ हैं[2]।

आज हजारों मील दूरी से शब्दों को हमारे पास तक पहुंचाने में माध्यम (Medium) रूप से 'ईथर' नाम के अदृश्य तत्वों की वैज्ञानिकों को कल्पना करनी पड़ी; किन्तु जैनाचार्यों ने हजारों वर्ष पहले ही लोकव्यापी 'महास्कन्ध' नामक एक पदार्थ के अस्तित्व को बताया है। इसकी सहायता से भगवान् जिनेन्द्र के जन्मादि की वार्ता क्षण भर में समस्त जगत में फैल जाती थी। प्रतीत तो ऐसा भी होता है कि नेत्रकम्प, बाहुस्पंदन आदि के द्वारा इष्ट-अनिष्ट घटनाओं के संदेश स्वतः पहुँचाने में यही महास्कन्ध सहायता प्रदान करता है। यह व्यापक होते हुए भी सूक्ष्म बताया गया है[3]।

---

१. The Jaina account of sound is a physical concept. All other Indian systems of thoughts spoke of sound as a quality of Space, but Jainism explains sound in relation with material Particles as a result of concussion of atmospheric molecules. To prove this scientific thesis the Jain Thinkers employed arrguments which are now generally found in the text books of physics.

—Prof. A Chakravarti: Jaina Antiquary. Vol. IX P.5-15.

२-३. 'भ० महावीर का धर्म उपदेश' खण्ड २ के फुटनोट।

जैन धर्म में पानी छान कर पीने की आज्ञा है, क्योंकि इस से जल के जीवों की प्राण-विराधना (हिंसा) नहीं होने पाती। आज के अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) ने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया कि जल में चलते फिरते छोटे-छोटे बहुत से जीव पाये जाते हैं। कितनी विचित्र बात है कि जिन जीवों का पता हम अनेक यन्त्रों की सहायता से कठिनता पूर्वक प्राप्त करते हैं, उनको हमारे आचार्य अपने अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा बिना अवलम्बन के जानते थे[1]।

अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये जैन धर्म में रात्रिभोजन त्याग की शिक्षा दी गई है। वर्तमान विज्ञान भी यह बताता है कि सूर्यास्त होने के बाद बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न होकर विचरण करने लगते हैं, अतः दिन का भोजन करना उचित है। इस विषय का समर्थन वैद्यक ग्रन्थ भी करते हैं[2]।

जैन धर्म में बताया गया है कि वनस्पति में प्राण हैं। इस के विषय में जैनाचार्यों ने बहुत बारीकी के साथ विवेचन किया है। स्व० विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु महाशय ने अपने यन्त्रों द्वारा यह प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाया, कि हमारे समान वृक्षों में चेतना है

---

१. (a) It is interesting to note that the existence of microscopic organisms were also known to Jain Thinkers, who technically call them 'Sukshma Ekendriya Jivas' or minute organisms with the sense of touch alone. —Prof. A. Chakravarti: Jaina Antiquary. Vol. IX. P. 5-15.

(b) 'बिन छाने जल का त्याग', खंड २।

२. 'रात्रि भोजन का त्याग', खंड २।

सिद्धारथ जी पिता तुम्हारे, त्रिशला की आंखों के तारे ॥१६॥
छोड़े सब झंझट संसारी, स्वामी हुये बाल ब्रह्मचारी[1] ॥२०॥
पंचमकाल महादुखदाई, चान्दनपुर महिमा दिखलाई ॥२१॥
टीले में अतिशय दिखलाया,[2] एक गाय का दूध गिराया[3] ॥२२॥
सोच हुआ मन में ग्वाले के, पहुंचा एक फावड़ा ले के[4] ॥२३॥
सारा टीला खोद बगाया, तब तुमने दर्शन दिखलाया ॥२४॥
योधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा तब तेरा ॥२५॥
ठण्डा हुवा तोप का गोला[5], तब सब ने जयकारा बोला ॥२६॥
मंत्री ने मन्दिर बनवाया, राजा ने भी द्रव्य लगाया ॥२७॥
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुम को लाने की ठहराई ॥२८॥
तुमने तोड़ी सैंकड़ों गाड़ी,[6] पहिया मसका नहीं अगाड़ी ॥२९॥
ग्वाले ने जो हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया ॥३०॥
पहिले दिन बैषाख बदी को, रथ जाता है तीर नदी को ॥३१॥
मैना गूजर[7] सब आते हैं, नाच कूद चित उमगाते हैं ॥३२॥
स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढ़ाया ॥३३॥
हाथ लगे ग्वाले का जब ही, स्वामी रथ चलता है तब ही ॥३४॥
मेरी है टूटी सी नइया, तुम बिन कोई नहीं खिवैया ॥३५॥
मुझ पर स्वामी जरा कृपा कर, मैं हूँ प्रभु तुम्हारा चाकर ॥३६॥
तुम से मैं अरु कुछ नहीं चाहूँ, जन्म-जन्म तुम दर्शन पाऊँ ॥३७॥
चालीसे को 'चन्द्र' बनावे, वीर प्रभु को शीश नवावे ॥३८॥

नित चालिस ही बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेवे सुगन्ध अपार, वर्द्धमान के सामने ॥३९॥
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो।
जिसके नहीं संतान, नाम वंश जग में चले ॥४०॥

---

१ बाल ब्रह्मचारी, खण्ड २।

२-७ Miraculous Place of Lord Mahavira. Vol. 1.

درد کو ہمدرد بن جانا سکھایا ویر نے

(۱) از مرکزِ علم و فن جناب سید کریم اقبال احمد صاحب ادیب جوائنٹ جنرل سکریٹری بزم ادب انبالہ شہر

بے زبانوں کا زباں والوں کو گرویدہ کیا / یہ کرشمہ اپنی عظمت کا دکھایا ویر نے
زخمِ دل کو مرہم کافور کی حاجت ہے کیا / درد کو ہمدرد بن جانا سکھایا ویر نے
دیکھیے عالم کو "اہنسا پرمو دھرما" کا سبق / ہند کو جنت نشاں آکر بنایا ویر نے

کچے دھاگے سے بندھی آتی ہے دنیا دیکھ لو
معرفت کا جام کچھ ایسا پلایا ویر نے

(۲) از منبع فلسفہ جناب مولوی محمد احمد صاحب اختر دیوبندی

کرکے تپ بارہ برس حاصل کیا کیول گیان / پھر گمرہوں کو راستہ سیدھا دکھایا ویر نے
کیا بمبسار؟ کیا چندرگپت؟ کیا مہاراجہ نند؟ / سب کو اپنا خادمِ بے زر بنایا ویر نے
رکھ دیا چرنوں میں سر ہاتھی نے عظمت دیکھ کر / اپنا گرویدہ زمانے کو بنایا ویر نے

شمعِ عرفاں کی جھلک اختر دکھا کر دہر میں
اپنا پروانہ ہر اک دل کو بنایا ویر نے

(۳) از خزینۂ سخن جناب سید علی احمد صاحب تاباں شیخپوری

جگمگا اٹھا ضیا پاشی سے جس کی بحر و بر / وہ چراغِ مہر بھارت میں جلایا ویر نے
دیکھیے پیغامِ اہنسا اور نویدِ کرم و داد / خوابِ غفلت سے زمانے کو جگایا ویر نے
پھول برسانے لگے دیوی دیوتا آکاش سے / شکمِ مادر سے جنم جس وقت لیا ویر نے

دے کے کارِ نیک کی تعلیم تاباں دہر کو
راستہ مکتی کے پانے کا بتایا ویر نے

عقیدت ویر

(از افتخار سخن جناب منشی جنیشور پرشاد صاحب مائل دہلوی)

ہو وردِ زباں آج مہاویر مہاویر — ہر دم ہو لبوں پر دمِ تقریر مہاویر
عالم کی ضیا روح کی تنویر مہاویر — ادراک کی ضو علم کی تصویر مہاویر

(از امیر الشعرا جناب منشی چنڈی پرشاد صاحب شیدا دہلوی)

ویراگ کا پیکر تھا وہ اک گیان کی تصویر — جو بیسواں اوتار تھے دنیا میں مہاویر
بندھن سے ہر اک کرم کے آزاد تھے جوگیر — عرفاں کی تجلی میں تھے یزداں کی تصویر

(از جادو رقم جناب منشی بلدیو سنگھ صاحب نگم دہلوی)

دوزخِ دنیا کو اس نے کر دیا خلدِ بریں — سچ تو یہ ہے اس جہاں میں ویر لاثانی ہوا
فیض کے دریا بہائے چشمۂ عرفان نے — خضر کا آبِ حیواں بھی شرم سے پانی ہوا

(از ناظمِ لاجواب کویراج پنڈت رگھو نندن سنگھ صاحب ناظم دہلوی)

بیکسوں کے خون کا دریا رواں تھا ملک میں — ویر آیا پریم کی گنگا بہانے کے لئے
جن غریبوں کا نہ تھا کوئی جہاں میں غمگسار — تو انھیں آیا کلیجے سے لگانے کے لئے

(از سحر گفتار جناب پنڈت جگدیش چندر صاحب جوش انبالوی)

ویر کے پر تو نے کل دنیا کو روشن کر دیا — تیاگ جیون ہے ترا تاریک رستے پر دیا
کس ادا سے تو نے کھولا زندگی کے راز کو — کس طرح قطرے کو تو نے اک سمندر کر دیا

(از دھرم پریمی جناب لالہ ہر سنگھ صاحب ایڈیٹر جین پرچارک سہارنپور)

ہو گیا ہے نقش دل پر کیا محبت ویر کی — کھنچ رہی ہے سامنے نظروں کے صورت ویر کی
مست ہو کر کیوں نہ ہوں جلوۂ رنگیں میں گم — بڑھ گئی ہو جبکہ اس درجہ عقیدت ویر کی

تجلیات ویر

(از ممتاز الشعراء جناب علامہ پنڈت برج موہن صاحب کیفی دہلوی)

خبر دنیا میں کسی کو بھی نہیں انجام کی
پھر ضرورت ہے جہاں کو ویر کے پیغام کی

(از افسر الشعراء حضرت آغا شاعر قزلباش)

پرائی آگ میں گرنا بہت مشکل ہے دانائی
مہاویر سوامی نے اک جا کر دکھا شیر اور بکری

(از حقائق نگار جناب منشی بشیشور پرشاد صاحب منور لکھنوی)

اک کشش رکھتا تھا بیگانے یگانے کیلئے
ویر کی تعلیم تھی سارے زمانے کے لئے

(از بحر فن علم و ہنر جناب علامہ شری الوپ چند صاحب آفتاب پانی پتی)

آزاد ہو کے شاد کیا مادر وطن
کرتے ہیں یاد ویر کو بھارت کے مرد و زن

(از فطرت نگار جناب پنڈت ونشہ پرشاد صاحب فدا بی۔ اے)

بھلائی جگ کی کرنے کو ہند میں [illegible]
یہ اقلیم محبت کے سچے بن کر حکمراں آئے

(از منبع علم و فن جناب لالہ امر چند صاحب قیس جالندھری)

اس صداقت پہ ہے سب اہل نظر کو اتفاق
ہند کی عظمت بڑھی ہے ویر کے پیغام سے

(از عندلیب سخن گیانی سادھو سنگھ صاحب ادیب فاضل منشی فاضل فرید کوٹ)

صہبائے معرفت سے پُر دل کا جام کردو
پھر ویر کی جہاں میں تعلیم عام کر دو

(از مصور فطرت جناب پنڈت امرناتھ صاحب ساحر ریٹائرڈ تحصیلدار دہلی)

اک مہاویر زماں وہ صاحب مقدور تھے
وصف میں جس کے قلم قاصر زباں معذور ہے

(از بلبل بوستان سخن جناب لالہ شیر سنگھ صاحب ناز دہلوی)

نام جس کا زخمیوں کا مرہم کافور ہے
اس ویر کے نور سے معمور کنڈل پور ہے

(از اثر خامہ جناب بابو رگھبیر پرشاد صاحب ویر سہارنپوری)

شری مہاویر سوامی جی میری آنکھوں میں آجاؤ
مجھے درشن ہمیشہ دو میرے دل میں سما جاؤ

جلوۂ ویر

(از ممتاز الشعرا جناب حضرت عرش ملسیانی)

دُنیا میں وردھمان کا جلوہ نظر آیا　　بے نزبان زمانے کا مسیحا نظر آیا
آزادئ عالم کا تماشا نظر آیا　　ہر افضل و اعلیٰ سے بھی اعلیٰ نظر آیا

سرچشمۂ صد فیض ہوا رحمتِ عالم
اوتار اہنسا کا ہوا زینتِ عالم

تقدیر ہے کیا ناخنِ تدبیر کے آگے　　کچھ چیز تصور نہیں تصویر کے آگے
کیا رات ہے خورشید کی تنویر کے آگے　　اک کھیل ہے اعجاز مہاویر کے آگے

اندر کو ڈرایا کبھی میرو کو ہلایا
دُنیا نے جو اب تک نہیں دیکھا تھا دکھایا

ہر علم میں یکتا تھے۔ ہر اک فن میں تھے کامل　　مشہور زمانے میں ہوئے عالم عامل
بندوں کیلئے فیض رساں جوہر قابل　　مقبولِ جہاں۔ قوتِ تسخیر کے حامل

وہ آب کہ آئینہ اگر دیکھے تو شرمائے
وہ تاب کہ یاقوت بھی ہیرے کی کنی کھائے

پیغام سنایا کہ اہنسا میں ہے جینا　　لگتا ہے اہنسا سے کنارے پہ سفینہ
ہاتھوں میں تھا اس بادۂ پُر کیف کا مینا　　دُنیا کو سکھاتا تھا جو جینے کا قرینا

وہ مے تھی جو پی لے وہ جنت کا مکیں ہو
جنت کا مکیں ایک طرف۔ روح امیں ہو

Lord Mahavira's Message of Salvation

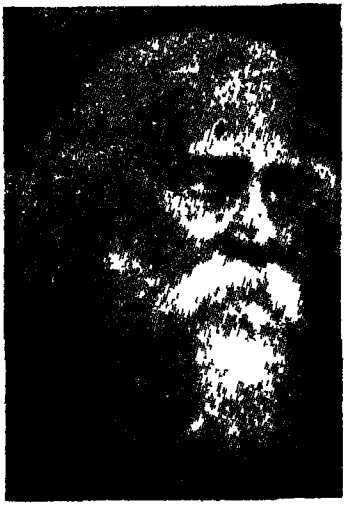

Dr. Ravindra Nath Tagore.

"Mahavira proclaimed in India, the message of salvation that religion is a reality and not a mere social convention, that salvation comes from taking refuge in that true religion and not from observing the external ceremonies of the community, that religion cannot regard any barrier between man and man as an eternal verity. Wondrous to relate, this teaching rapidly overtopped the barriers of the races' abiding instinct and conquered the whole country. For a long period now the influence of Kashatriya teachers completely suppressed the Brahmin power."

—Jain Gazette, Delhi, (28th Oct. 1943) P. 16.

Salvation is Doctrine of Mahavira

Dr. K. N. Katju.

In these days of hatred and distrust, which seem to encompass humanity in a fearful fashion, darkening the whole field of human endeavour and activity, the salvation of the human race lies in the doctrines preached by Shri Mahavira.

—*Mahavir Sandesh, Jaipur (25th May 1947) P. 16*

Jainism in Germany

Hon'ble S. Dutt. Indian Ambassador in Germany.

"I am particularly glad to see how in this great country (Germany) so distant from the native place of Jainism, the scholars and others show a great interest for the dogmas and the philosophy of the Jain religion. The number of the Jains amounts only 12 and a half millions, but inspite of it, the teachings of this great religion ought to be remembered and followed more than ever in past.

—*Voice of Ahinsa, Aliganj Vol II. P 250*

Way of Peace and Happiness

His Excellency
General K. M. Cariappa
C-IN-C.

The Commander-in-chief sends you his very best wishes and hopes that your work on Lord Mahavira's life will be a success with high dividends in obtaining peace and happiness of humanity in this world.

—Letter No 34/C-in-C 5th. Sep. 1950.

Shri K.M. Cariappa

Mahavira's Teachings.

Necessary for Good-Life.

Honble Rajkumari Amrit Kaur

Ahinsa is a basic necessity for a good life for individual, community, nation and world. Without it, there can be neither contentment nor prosperity, nor peace

—VoA Vol. II P. 92

Usefull for all Times

Mrs. Lila Wati Munshi

The sandesh of Bhagwan Mahavira is useful for all times, specially in these days, when the world is divided into warring camps.

—Mahavir Sandesh Jaipur (25th May, 1947) P. 4

True Path of Liberty and Justice.

Hon'ble Dr. M. B. Niyogi.

Chief Justice, Nagpur High Court.

The Jain thought is of high antiquity. The myth of its being an off-shoot of Hinduism or Buddhism has now been exploded by recent historical researches. The Ratan Traya of the Jain thinkers is the true path towards Liberty and Justice. The Anekanta-vada or the Syada-vada stands unique in the world's thought. The teachings of Jainism will be found on analysis to be as modern as they are ancient. The Jain teachers were the first and foremost in the history of human thought to propound the principle of Ahinsa.

—Jain Shasan (Bhartiya Gian-Pith) Foreword P. 7—18

Reign of peace

Hon'ble Justice N.C. Chatterji
Calcutta High-Court.

If the message of Lord Mahavira is followed by all, there would be a reign of peace and all causes of unrest in the world will be speedily removed.

—Short Studies on China And India. P. 148.

Jainism has given Gandhi

Honble P.N. Sapru, Allahabad.

The Jain community has given to this country the greatest leader and reformer Gandhi. In a materialistic world the spiritual teachings of Jainism has an immense value.

—Vir, Delhi (29-5-1943) P. 58.

Hon'ble Mrs. Roosvelt Struck Most.

Hon'ble Shri Misri Lall Gangwal

Chief Minister of Madhya Bharat.

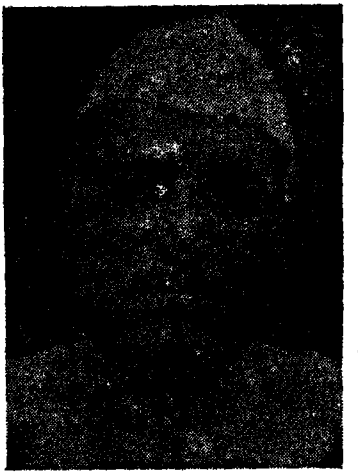

Shri Misrilal Gangwal

The only panacea to heal up the wounded humanity is the principle of Ahinsa. It is the onerous duty of Jain Community to spread their sublime principle of Ahinsa far and wide. Hon'ble Mrs. Roosvelt visited India, What struck her most in our country is our cultural morality of Ahinsa, with which Indians fought out successfully battle of Independence. —*V.O.A. Vol. II P. 79.*

Lord Mahavira's Victory

Hon'ble Shri Sitaram Jajoo

Law Minister of Madhya Bharat.

I am anxious to see the day when the principles of love and non-violence preached by Lord Mahavira would be practised by people all over the world, leading to peace and contentment in all corners of the globe. He was a very brave man as he had attained victory over his passion and desires. —*V O A. Vol. II. P. 78.*

Greatness Of Jainism.

H. H. Shri Krishna Rajendra Waidyar Bahadur
G.C.S.I., G.B.E., Maharaja of Mysore.

Jainism has cultivated certain aspects of that life which have broadened India's religious out-look. It is not merely that Jainism has aimed at carrying Ahinsa to its logical conclusion undeterred by the practicalities of the world, it is not only that Jainism has attempted to perfect the doctrine of the spiritual conquest of matter in its doctrine of the Jina—What is unique in Jainism among Indian Religions and philosophical systems is that it has sought Emancipation in an upward movement of the spirit towards the realm of Infinitude and Transcendence.

—*Vir. Vol. X. P. 1.*

Nationalistic out-look

Hon'ble Raja Narendra Nath.

The Jains have always a Nationalistic out-look.

—*Vir. (20th May, 1943) P. 259.*

Non-Violence, Mercy And Forberance.

His Excellency Shri. M S. Aney Governor of Bihar.

Shri M S. Aney,

The doctrine of non-violence, mercy and forberance reeched in Mahavira's Teachingsits highest expression. He carried the doctrine to its logical end and insisted upon man and his followers to observe a code of conduct in which scrupulous attention has been paid to avoid physical or mental violence to anybody, even the meanest creature crawling on the earth.

—Lord Mahavira Commemoration. Vol. I P 5—6

Gandhi Owes Inspirations.

His Excellency Dr. B. Pattabhi Sitaramayya

Governor Madhya Pradesh,

The Father of Nation, Mahatma Gandhi owes his inspiration for the teaching of non-violence to the founders of the Jain Culture. There cannot be greater compliment to the principles of Jainism then this undeniable fact.

—Voice of Ahinsa Vol II P. 143.

Jainism is Eternal Truth.

Mahamahopadhyaya
Dr. Ganga Natha Jha.
M. A., D., Litt., L.L.D.

Jainism is based upon the eternal truth of philosophy, the study of which truth is not only desirable but also to a very great extent obligatory.

J.H.M. (Nov. 1924) P. 6.

Jain Literature in Tamil.

Shri V.G. Nair, Asst. Secy Sino-India Cultural Society.

'*Tirukural*' and *Naladiyar*, which are considered most precious, have influenced Tamil people for greater than any other book in the entire Tamil Literature. In the view of Prof. M. S. Ramswami Ayungar the great author of 'Tirukural' was a Jain.

The next important Jain work in Tamil is '*Naladiyar*, which is one of the Vedas of the Tamil people. Its one English translation by Rev. G. V. Pope was published by Luzac & Co in 1900 and the other by W. P. Chetty and Co. The teachings inculcated in '*Naladiyar*' by the pious Jain ascetics, have greately contributed in moulding the National Characteristics and the religious thoughts of Tamil speaking people.

—V o.A. Vol. 1. Part I P. 8 and Part V. P. 5.

Lord Mahavira's Life and Work.

Dr. Beal Chand M.A. Ph. D.

Mahavira left the world, realised the truth and came back to the world to preach it. There was immediate response from the pepole and soon got disciples and followers. Eleven learned Brahmins were the first to accept his discipleship and became ascetics.

Mahavira was never tired of answering questions and problems of various types, '*Scientific*,' '*Ethical Metaphysical and Religious*. He had broad out—look and Scientific accuracy. He had firm conviction and resolute will. His tolerance was infinite. He was a cold realist and has immense faith in human nature. He was a thorough going rationalist who would base his action on his conviction, unmindful of the context of established customs or inherited traditions.

Mahavira's disparaged social inquity, economic rivalry and political enslavement. His Sangha was open to all irrespective of caste colour and sex. Merit and not birth was his determination. He popularised philosophy and religion and threw open the portals of heaven even to the down and the weak, the humble and the lowly.

—*Lord Mahavira Commemoration Vol. I. P. 60—65*

Lord Mahavira

PREACHED

Universal Religion

Hon'ble Shri Narayn Sinha
Finance Minister, Bihar.

Lord Mahavira preached to the world the ideals of Ahinsa, Universal Religion and fellow feelings of which we are so much devoid to day. It is the realisation of Lord Mahavira's ideals where in lies the real peace and happiness of all living in this sub-continent of India.

Love and Harmony.

Hon'ble Dr. Syed Mohamad
Development Minister, Bihar.

To-day the world is weary of violence and is seeking a new order of life based on non-violence, love and harmony therefore the message of Ahinsa and universal brother—hood propogated by the great spiritual teacher Mahavira should once more be taught to the strifetorn world.

—Mahavir Sandesh Jaipur.
(25-5-47) P: 20.

Jain Books Older Than Classical Lirterature:

Prof. Dr. Herman Jacobi.

Jainism has a metaphysical basis of its own, which secured it a distinct position apart from the rival systems both of the Brahmans and of the Buddhists. Now I have never been of opinion that Jainism is derived from Hinduism or Brahamanism.

The sacred Books of the Jains are old, avowedly older than the Sanskrit literature, which we are accustomed to call classical. We can find no reason why we should distrust the sacred books of the Jains as an authentic source of their history.

Let me assert my conviction that Jainism is an original system quite distinct and independent from all others and that it is of great importance for study of the philosophical thought and religious life in ancient India.

—Sramana Bhagwan Mahavira Vol. I. P. 55—80.

JAIN LOGIC & HARMONY

Prof. Dr. W. Schubrig

He, who has knowledge of the structure of the world cannot but admire the logic and harmony of Jain Refined cosmographical ideas.

—Anekant, Vol. I. P. 310.

AHINSA IS LOVE & LOVE GOD

Dr. M. Abbas Ali Khan Lomas

Abinsa is the fruit of love and love is God. Let every individual on earth eat and digest the fruits of this Holly Tree.

—VOA. Vol. I.P. I.

MAHAVIRA'S TRIUMPHAL SONG.

Dr Albert Poggi, Genova.

The teachings of Mahavira sound like the triumphal song of a victorious Soul that has at least found in this very world its own deliverance and freedom.

—VOA. Vol. II. P. 36.

Great Ethical Value.

Dr. A. Guernot. France.

There is very great Ethical value in Jainism for man's improvement. The Jainism is a very original, independent and syatematical doctrine It is more simple more rich and varied than Brahamanical system and not negative like Buddhism.

—Jain Dharama Prkash P. ५

Spiritual Teachings.

Mr. Walt Whitman.

The bard of America, the universal poet and the prophet of the new world Mr. Walt whitman is an expounder of the teachings of Jainism, the religion and philosophy of the spiritual conquerors who have earned the title of 'JINA' and whose teachings are given to the world through the instrumentality of the Jains in India.

—Digamber Jain 'Surat' Vol X P. 39.

Wonderful Effect Of Jainism

Dr. Hopkin

I found once that the practical religion of the Jains was one worthy of all commendation and I have since regretted that I stigmatized the Jain religion as insisting on denying God, Worshipping man and nourshing vermin as its chief tenents, without giving the regard to the wonderful effect, this religion has on the character and morality of the people. But as is often the case, a close acquaintance with a religion brings out its good side and creates a much more favourable opinion of it as a whole than can be obtained by a merely objective literary acquaintance.

—Vir, Delhi. Vol. VIII P. 26.

UNIVERSAL TREASURES

Dr. Roymond Frank Piper,
Prof. University of New-York.

In the sacred writtings of the Jain Faith, there are many wonderful sayings which are universal treasures.

—The Voice of Ahinsa, Vol. I Pt. III. P. 4

DISTINGUISHED PRINCIPLES

Dr. Archie J. Bahm
Prof. University of New-Mexico

I look with considerable appreciation upon Jain logic as having long distinguished principles which only now are being re-discovered in the West.

—VOA Vol. I. P. II. P. 20

Mahavira's Religion Uncriticisable

Dr. G. Tucci M.A., Ph. D. Prof. University of Rome.

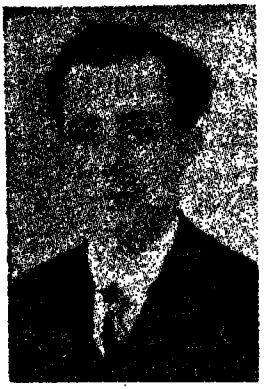

No scholar, I think will deny, that Jainism is one of the greatest and most important, creations of Indian mind, still surviving after centuries of gloring life. There is no branch of Indian civilization or literature or philosophy on which the deeper study of Jainism will not throw light. It is impossible to any sound scholar, interested in the history of Indian logic to ignore Jain logic, which deserves the largest attention and most deligent researches.

The literature of every belief can be discussed and scrutinized by scholars, but the living essence of Mahavira's doctrine shall remain un-touched by any criticism.

GREAT SAVIOUR LORD MAHAVIRA

Prof. Dr. U.S. Tank.

Lord Mahavira, the great saviour of the world had handsome and symmetrical body and magnetic personality with heroic courage and perserverance.

He had cast off the bonds of ignorance. Illumination had come upon Him and He became 'master' as *Theosophist* would say.

VOA. Vol. II, P. 67—70.

Developed System of the Metaphysics

Dr. Helmuth Von Glasenapp, Prof. Berlin University.

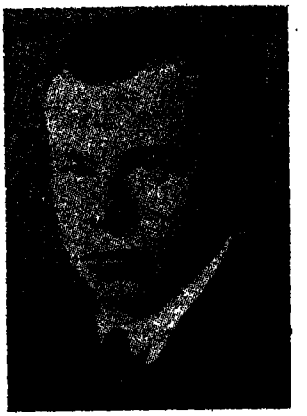

Jainism is uptil now very little known in Europe. The Jains have created a developed system of metaphysics, written up to the minute details, which looking to its terminology as also to its contents, could be looked upon as an independent and a peculiar product in the philosophical region of the wonderfully fruitable Indian spirit.

MAHAVIRA FINEST KIND OF SUPERMAN.

P. Joseph Mary ABS. Germany

Mahavira's ideal teachings is the strongest spiritual reactionary. He has proved through his life that soul is not the slave of body. He destroyed the world of this materialistic creed and ethic in a way that we may call Him a Superman of the finest kind. We claim for Him the verses of the German thinker Herder:—

"He's hero of the conqueror of Battle-fields,
He's hero the conqueror in Lion-hunting,
But he's hero of heroes, the conqueror of himself."

—Bhagwan Mahavir Ka Adarsh Jiwan P. 17.

JAINISM IS SOLUTION OF MANKIND.

Dr. Louis Renou Prof. Sorbonne University, Paris (France).

"What is the use of creating new religious movements, when JAINISM COULD OFFER THE SOLUTION REQUIRED FOR THE NEEDS OF SUFFERING MAN-KIND. It has the advantage of possessing an ancient and venerable tradition. It is the first amongst the world religions, which proclaimed Ahinsa as the main criterion of Moral life."

—*World Problems and Jainism (Intro) P.I.*

Solution of Brutal Force.
Prof. Albert Eintein

Brutal force cannot be met successfully for any length of time with similar brutal force, but only with non-co operation towards those who have undertaken to use brutal force.

—*Mahavir Commemoration Vol 1. P. 3.*

Jain Valuable Literature.
Sir Vincent A. Smith

The Jain possess and sedulously guard extensive Libraries full of valuable material as yet very imperfected explored and their books are specially rich in historical and semi-historical matters.

—*Jain Encyclopaedia Vol I P. 27.*

TORCH-BEARERS OF HUMANITY

Prof Dr. Herr Lothar Wendel, Germany

The day will come soon, when all Jain Tirthankaras will be recognised as the Torch-bearers of Humanity.

—VOA. Vol. III P. 81.

GOSPEL OF AHINSA

Prof. Tan Yunshan of China

The Gospel of Ahinsa was first deeply and systematically expounded, properly and specially preached by the Jain Tirthankaras more prominently by the last 24th Tirthankara Mahavira Varddhamana. Then again by Lord Buddha and at last it was acted in thoughts, words and deeds & symbolized by Mahatma Gandhi.

—*Mahavira Commemoration Vol. I.*

Example for Everyone

Mr. Herbert Warren of England.

Mahavira lived a life of absolute truthfulness, a life of perfect honesty, a life of complete chastity and a life which gives protection to all living beings. He lived without possessing any property at all, not even clothing. He enjoyed Omniscience, was perfectly blissful, knew himself to be immortal and his life is an example for everyone who wishes to get away from pain.

—*Vir. (15.5.26) P. 2.*

Why I Accepted Jainism ?

Mr. Matthew McKay

Jains offer their message to all. In Jainism you will not be requested to accept any statement with behind faith. From my personal experience, I can say that all who will accept its teachings and put them into practice will enter a world of undreamed delight.

Jainism teaches that soul is immortal and in its pure nature is full of absolute knowledge and infinite bliss. It is only when soul is drawn low by the body and the senses that it is held in bondage with karmas. To meditate for only a few minutes daily on the pure nature of the soul is path to Liberation and Salvation. These are the main reasons why I accepted wonderful Jainism.

—*Why I became Jain ? (World Jain Mission.)*

Why I Became A Jain ?

Mr. Louis D. Sainter.

I am a Jain because Jainism presents consistent solution of the problems of happy life.

The question who am I ? What am I ? For what reasons do I exist ? All are answered in the most irrefutable manner. It gives perfect health & peace of mind. There is a metaphysical and scientific explainations of all apparent injustices as known to the West, hence I have accepted the Jainism.

—*Vir (15.5.1926) P. 3.*

JAIN YOGA

Dr. Felix Valyi

Jainism has been neglected by the West. Only a handful of European scholars have devoted time to the study of the sources of Jainism and even now very few Americans know the essential fact about Jainism. Jacobi, W. Schubrig and H. V. Glasenapp, Guerinot F. W. Thomas have clarified the tradition and the teachings of Mahavira. Buddha who probably was himself a Jain, took the tremendous decision to start his own middle path.

The greatest Indologist of Germany, HEINRICH ZIMMER in his posthumous work "**The Philosophies of India**" published by the Panthon Books, in New York in 1951, has proved that Jain Yoga originated in Pre-Aryan India Jainism is the fountain head of Indian thoughts in its Purest Yogic Tradition and Jain Yoga is pre-historic, seems certain

The spiritual exercises of St. Ignace of Loyola are a sort of Christian Yoga, limited in its scope, is now recognized that the '**Imitation of Christ**," by Thoms Kempis is also a kind of Medioeval Yoga for the training of the Christian Mind. Sufism is equally based on yogic principle, but all these non-Indian manifestations of yoga thoughts and practice never reached the height which Jainism has achieved long before Patanjali, the codifier of yoga. There is ample evidence that Jainism represents the purest and strictest form of yoga as self discipline. Lord Mahavira appears to be mainly as a man of iron will. Jain yoga is pure yoga & Mahavira is the greatest example of such training the embodiment of the ideal man, perfect man.

—*VOA Vol. II P. 98—103.*

Is Death the End of Life ?

Shri B. Nateson, Editor the Indian Review, G.T. Madras.

"Is death the end of life ? Does individuality persist after death ? Are there other worlds to which the soul travels after stuffling off this mortal coil ? Do gifts and oblations and ceremonies affect the course of the spirit after leaving the body ? Is there any truth in re-birth ?" These are questions which haunt every thinking man.

Stories of Nachiketas or Markandeya are bound to impress, but there are some striking instances of authentic facts, which must carry conviction in respect of the theory of re-birth:-

"Soldier castor, was transferred to Maymayo (Burma) and there he felt that he had seen the land, lived in it and he told Lance Carparal Carrigon that on the other side of the Iraw-

ady, there was a large temple with a huge cracks in the wall from top to bottom and near by a large bell—statement that he found true afterwards.1"

"Shanti an 8 years old girl of Jung Bahadur, a merchant of Delhi, used to say, ever since she could talk that in her former life, she was married to a man of Mathura. whose address she gave. She recognized her former husband at once and told him facts which were known only to him and his former wife. She also told him that she had buried Rs. 100/— at a certain place in her previous life, which she recovered."2

A 5 years old child of one Devi Prasad Bhatanagar, living in Prem Nagar, Cawnpur says that in his previous birth his name was Shiva Dyal Muktar and that he was murdered during the Cawnpur riot in 1931. One day he insisted to go to his old house, where he said his former wife was lying ill. He was taken there and he at once recognised his wife his children and other articles.3

A similar case is also reported from Jhansi4 and there are several other authentic instances5 to prove re-births and Sir Oliver Lodge, a Scientist was able to prove that the spirit after leaving the body continues to hover round its late abode.

---

1. 'Sunday Express' London of 1935.
2. Indian Review, Madras, Vol 51 (Sept. 1950) P. 581.
3. Amrita Bazar Patrika, dated 1st. May 1938.
4. 'Hindustan Times, New Delhi, dated 16th. Sept. 1938.
5. a. 'Immortal Life,' by Voice of Prophency, Poona.
   b. 'What Becomes of Soul After Death' ? By Divine Life Society Rishikesh (Dehra Dun)
   c. 'Life Beyond Death,' by A. B. Patrika, Calcutta.

AHINSA IN ISLAM

Dr. M. Hafiz Syed M.A.,Ph.D.,D-Litt. Prof. Allahabad University

The fundamental principle under lying the ideal of Ahinsa is the recognition of one life in all mineral, vegetable, animal and human. **"Not giving pain, at any time, to any being in thought, word or deed, has been called Ahinsa by the great sages."**

How can a teacher of mankind, the prophet of Islam enjoy anything but Ahinsa on his people, when God sent him on this earth with the express command—**"And we have not sent thee but as a mercy for the world;"**[1]

The lower animals were too not by any means excluded from the benefit of the prophet's all-embracing love. It is recorded of him that when being on a Journey, he did not say his prayers untill he had unsaddled his camel, a piece of amiable conduct puts us strongly in mind of the famous last lines of Coleridge's Ancient Mariner:—

'He prayeth well who loveth well,
Both man and bird, and beast.
He prayeth best, who loveth best
All things both great and small;
For the dear God who loveth us,
He made and loveth all.

---

1. Alkoran XXI 107.

In the holy Koran animal life stands on the some footing as human life in the sight of God: **'There is no beast on earth nor bird, which flieth with its wings, but the same is a people life unto you mankind—upto the lord shall they return "**[1]

"All his creatures are Allah's family for their subsistance is from Him; therefore the most beloved unto Allah is the person who does good to Allah's family. Whoever is kind to his creatures, Allah is kind on him."

Some of the mystics in Islam never encouraged the practice of Slaughtering animals. What is called Ahinsa is completely observed during the period of Hajj, where the Muslims from all over the world congregate in the name of God. There were and there still are a number of Muslim Saints and commoners, who abstain from meat eating. Hazrat Ali seldom took meat and would say, **"Don't make your stomach a tomb of slaughtered animals."**

A man came before the prophet with a carpet and said, **"O Prophet, I passed through a wood and heard the voices of the young ones of birds, took and put them into my carpet. Their mother came fluttering round my head and I uncovered the young. The mother fell down upon them. I wrapped them up in carpet and these are the young ones which I have."** The Prophet said, **"Put them down,"** and when he did so, their mother

---

1. Koran VI 38.

joined them. The Prophet said, "Do you wonder at the affection of the mother towards her young? I swear by Him who sent me, verily God is more loving to His creatures. Return them to the place from which ye took them and let their mother be with them[1]."

As a matter of fact any kind of flesh-eating is not obligatory on the Muslims[2]. The prophet often insisted upon the rights of dumb animals. Said He, "Do you love your Creator? Then love your fellow creatures first, verily there are rewards for it[3] He who keeps any one from eating flesh will be saved from the fire of hell[4]".

It is a great pity that on account of certain historical reasons Islam in India passes as a synonym for violence Muslim Conquerors are described as having overrun countries with the Koran in the one hand and the sword in the other, whereas we read in Koran, "There is no compulsion in religion[5]." The Prophet did not believe that merely making the Muslims profession of faith once in a lifetime could make a 'mumin' (faithful) to entitle to Salvation. He said, "He is not a 'MUMIN' who Committeth adultery or who stealth or who drinketh liquor or who plundereth or who embezzleth; beware, beware Kindness (Ahinsa) is a mark of faith and who ever hath not Kindness (Ahinsa) hath no faith."

It is clear from these authentic and authoritative quotations that Islam like other faiths of the Aryan stock does believe in Ahinsa with all its underlying significance and has never preached violence, force or coercion as some ill-informed enemies of Islam suppose it to do.

1-3. "Voice of Ahinsa" Aliganj (India), Vol I P. 20—23.

4. Asma, daughter of Yazid.

5 Holy Koran, Sura II, Ayat 257.

६ 'हजरत मोहम्मद साहब का अहिंसा से प्रेम' इसी ग्रन्थ का पृ० ६४

७ 'इस्लाम में अहिंसा' इसी ग्रन्थ का खन्ड ३।

JAIN MONKS

Jain Monks not for Name

Dr. Herman Jacobi

Sole and whole object of Jain Monks is to lead a life dedicated to the betterment of soul and uplift of humanity. They do not become Sadhus for name and fame.

—Short Studies on China and India. P. 150.

Moral Tone of Jain Monks

Rev. Prof. Dr. Charles W. Gilkey

I have been greatly impressed by the high moral tone and ethical standard of Jain Sadhus & also by their teachings.

—Short Studies on China & India. P. 151.

SPIRIT OF PEACE

Miss Millicent Shephard, Chief Organiser Moral & Social Association

From one lamp a thousand can be lit from the glowing lamp of Jain Acharya's teaching and examples many holy lives are lit. May their spirit of peace and followship spread through out.

—Short Studies on China and India. P. 151.

Far Far Greater Influence than the Greatest Emperors.

Shri G.D. Dhariwall

Jain monks have been very learned scholars & not merely blind followers of Jain Law. They got high degree of sacrifies and selflessness and their influence on the public has been far far grearter than that of the greatest Emperors. It is no wonder that Jainism has influenced the Indian civilization to a greater degree than Buddhism.

—J. H. M. (Feb. 1924) P. 28.

Literary Contributions of Jain Monks.

Shri S.R. Sharma Prof. History, Willingdon College, Sangli.

"The Jain religious preceptors, saints and scholars have rendered remarkable services to the Nation as well as to the world by their lofty character and ennobling literary compositions. As for the proper understanding and appreciation of English language one cannot afford to neglect the master pieces of Shakespeare or Milton in the same way the litterary compositions of the Jain Acharyas can not be ignored due to the fact that their study is indispensable for the knowledge of Kanauda and other Languages.

—S. C. Diwakar Nyayathirthe[1]

"No Indian Vernacular," wrote Mr. Lewis Rice, "contains a richer or more varied mine of indigenous literature than Jain works[2]" Jains wrote on all subjects[3] such as Religion, Ethics, Grammar, Prosody, Medicine and even on Natural Science. Out of the 280 poets no less than 95 are Jain poets, the Vira—Saiva or Lingayat poets come to next being 90, whereas the Brahmanical writers are only 45 and the rest all included 50.[4]

1. A Public Holiday on Lord Mahavira's Birthday P. 12
2. Rice, Mysore and Coorg. Vol I Para 398.
3-4. For names of books and their authors consult 'Jainism and Karanata Culture by Karanataka Historical Research Society DHARWAR. (S. India). Priced Rs. 5/-

Catalogues of Jain Literature in various languages from:—

(a) Digamber Jain Pustkalya, SURAT.
(b) Bhartya Gianpith, 4 Durga-Kund Road Banaras.
(c) Digamber Jain Parishad, Dariba Kala, Delhi.
(d) Jain Mitar Mandal, Dhrampura, Delhi.
(e) World Jain Mission, Aliganj, Eta, U.P.
(f) Manak Chand Jain Grantha Mala, Hirabagh, C.P. Tank, Bombay.

The interest in Jain Literature evinced both by rulers as well as their ministers and generals is amply indicated by works such as the 'Prasanottara Ratanmalika' by Amoghavarsa of Rastrakuta, Nanartha-Ratan Mala by Irugapa Dandanayaka of Vijayanagara and the Chaundaraya Purana by Chaundaraya, Minister and General of Mara Singha and Racamalla Ganga but here we shall deal with the work contributed by Jain monks[1] only:—

KUNDKUNDACHARYA is by far the earliest, the best known and most important of all Jain writers[2], His influence is indicated by the fact that after Lord Mahavira and Gotama Gandhara, he is Kunkunda whose name is taken with great honour and respects[3]. An inscription at Sravana belogola says, "**The Lord of ascetics, Kundkunda was born through the great fortune of the world. In order to show that he was not touched in the least, both within and without by dust (Passion) the Lord of ascetics left the earth the abode of dust and moved four inches above[4]. His most important works are (1)Samayasar (2)Pravachanasar (3)Niyamasar**

1, For 28 famous Jain Monks and their work see, JAIN ACHARYA; Rs. 1/10 by Digamber Jain Pustakalya, Surat.

2. Narsimhuachary: Karnataka Kavicaritre. Vol I Introd, P. XXI.

3. मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गल कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

4. Epigraphia Carnatica Vol II S.B. 254—351.

(4) Rayanasar (5) Pancastikaya (6) Astapahuda and (7) Bhavamokkha.[1]

UMASWAMI who is said to be disciple of Shri Kundkunda has composed (1) **Tattvarthadhigama Sutra** (2) **Bhasya on the same** (3) **Puja-Prakarana** (4) **Jambudwipa Samasa** (5) **Prasamarati.** Prof. Dr. Hira Lal calls Tattvarthadhigama Sutra to be the **Jaina Bible**[2] It is the fountainhead of the Jaina philosophy and also of the use of Sanskrit by Jains. Its importance may be judged from the fact that top most scholars like Samantabhadr, Pujyapada, Akalanka, Vidyanandi, Probha Chandra and Srutasagara are among its commentators.

SAMANTABHADRA in Sravanabelgola inscription is described as one whose sayings are an adamantine goad to the elephant the disputant and by whose power this whole earth became barren (i.e. was rid) of even the talk of false speakers He must have been a very great disputant is also indicated by the title '**Vadi-Mukhya**' given to him in the "**Anekanta-Jayapataka**" by Haribhadra Suri a Svetambara writer. He powerfully maintained the Jaina doctrine of Syadvada,[3] interesting corroboration of which may by found in the instance of Vimla Chandra who is said to have put up a notice at the gate of the place of Satrubhayankara, challenging the Saivas, Pasupatas, Buddhas, Kapalikas and Kapilas to engage him in disputation.[4] The advent and of this great writer is

1. All may be had in Hindi, from Surat, while Samaysara in English from Bhartya Gianpith, 4, Durgakund Road Banaras.
2. Prof H. L. op. cit. pp. vi-vii.
3. Rice, (E.P.) op. cit. P. 36.
4. Cf. Ep. Car. II. Introd. P. 84.

rightly considered to mark an epoch not only in Digambar & Svetambara history but also in the whole Sanskrit Literature.[1] His well known work is the Ratankarandka Sravakachar, which means Jewel Casket of laymen's Conduct. His words are admitted as pious and powerful as those of Lord Mahavira.[2] He also wrote several other brcks like (1) Aptamimansa (2) Jina Stuti-Sataka and (3) Svayambhu Sutra etc.

PUJY APADA is also called Devanandi. He was a very eminent scholar of Philosophy, Logic, Medicine; and Literature, Pujyapada (one whose feet are adorable) appears to have been a mere title, which he acquired because forest deities worshipped his feet. He is also called Jinendra Buddhi' on account of his great learning. His most famous works 'Jinendra-Vyakarna or Grammar of Jinendra - buddhi is well known. 'Pancavasutka,' the best commentary on Jinendra is also supposed to be the work of Pujyapada. Panini Sabdavatara is another Grammatical work traditionally cosidered to be a commentary on Panini grammar by Pujyapada. Vopadeva counts it among the 8 authorites on the Sanskrit grammar[3] He also wrote Kalyanakarka a treatise on medicine, long continued to be an authority on the subject. The treatment it prescribes is entirely. vegetarian and non-alcoholic[4] Pujyapada was a triple doctor (Ph. D., D. Litt.,

1. Bombay Gazette I ii P. 406.

२ जीव सिद्धि-विधायीह कृत-युक्त्यनुशासनं।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥
— श्रीजिनसेनः हरिवंशपुराण।

3-4. Rice (E.P.) op. Cit. p. 110, 27-37.

M. D)[1] He was not only an highly learned thinker but was also a great saint,[2] whose sacred feet, celestial beings worshipped with great devotion[3] His Sarvartha Sidchi is an elaborate commentary on the Tathvartha Sutra of Umaswami. His Upasakacara is an hand-book of ethics for the Jain laity.[4]

AKALANKA is classed among the Nayyayikas or great logicians.[5] He said to have challenged the Buddhists at the court of kings Hastimalla (Himasitala) of Kanchi, saying that the defeated party should be ground in oil mills[6] The Buddhists were driven to Ceylone owing to the victory of the Jain teacher[7] This victorious logic of Akalanka made his name proverbial as a Bhttakalanka in logic. His most famous work is the Tatvarthavartika Vyakhyalankara.

JINASENA who by his propagating increased the power of the Jain sect, was a celebrated Jain author[8]. He was the king of poets. He commenced Adipuran which according to Bhandarkar is an encyclopaedic work in which there are instances of all matters and figures.[9] He also wrote Mahapuran which is a very nice historical work. He has also written Parsvabhyudaya, which is one of the curiosities of Sanskrit literature. It is at once the product and mirror of the literary taste of the age. Universal judgement assigns the first place among Indian poets to **KALIDASA**, but Jinasena claims to be considered

1-3. C. S. Mallinathan : Sarvartha Siddhi, Introd. P. IX.
4. Prof. Dr. Hira Lal, op. cit. P. XX.
5. Peterson, op cit. P. 79.
6-7. An inscription at Sravanbelgola also alludes to this victory, which gained solid foot ng and patronage of Pallavas Kings.
—*Prof. Moti Lal : Digamber Jain (Surat) Vol. IX P. 71.*
8. Cf. Bhandarkar, The Bombay Gazetter I ii P. 406-407.
9. Bhandarkar, Report on San. MSS. 1883-84. P. 120 -121.

a higher genius than the author of the 'CLOUD MESSENGER'[1] The story relating to the origion of 'PARSVABHYUDAYA' is too interesting to be omitted. Kalidasa came to Bankapura priding over the production of his 'Megha Duta' Being instigated by Vinayasena, Jinasena told Kalidasa that he had pirated the poem from some ancient writer. When challenged by Kalidasa to prove his statement Jinasena pretended that the book he referred to was at a great distance and could be got only after eight days. Then he came out with his own Parsvabhyudaya', the last line of each verse in which was taken from Kalidasa The latter is said to have been confounded by this, but Jinasena finally confessed his whole trickery.[2]

Soma Deva was the most learned writers. "What make his works of very great importance", observes Dr. Hira Lal, "are the learning of the author which they display and the masterly style in which they are composed" The Prose of 'Yasastilaka' vies with that of Bana and poetry at places with that of Magha.[3] According to Peterson 'Somadeva's work Yasastilaka is in itself a true Poetical merit, which nothing but the bitterness of theological hatred would have excluded so long from the list of the classics of India.[4] In the words of Peterson ' it represents a lively picture of India and well high absorbed the intelleotual energies of all thinking men.[5] The last part entitled 'Upasakadhyanam'. divided into 46 chapters is a handbook of popular instructions on Jaina doctrine and devotion[6] His other work of considerable interest is 'Nitivakyamrta' which is almost verbally modelled on Kautilya s ' Artha-sastra.' Indeed it is a certificate to the University of this Jaina writer.

These writers were historic persons. who exercised tremendous influence in their own days is equally certain.

1. Journal of Royal Asiatic Society (Bombay Branch) 1894,p224
2. Of Nathram Premi, op. cit. P. 54-55.
3. Dr. Hira Lal, op. cit. P. xxxii.
4-6. Peterson, op. cit. IV. P. 33, 46.

Miracle Place of Mahavira.

Justice R. B. Jugmander Lal M.A.,M.R.A.S, Bar-at-Law.

There is a temple of Lord Mahavira in Chandanpur gram of Pargana and Tehsil Naurangabad in Jaipur State, at a distance of about nine miles from the Pataunda Mahavira Road Rly. Station, between Gangapur city and Hindaun Junction on the B.B. & C.I. Rly.

The calm image of Lord Mahavira, with round cheeks, arched eye-brows and almost dimpled chin gives a sort of innocent child-like or cherub-like look to the face The mouth is an eternal blossoming of a smile of irresistible calm and never-failing compassion and sweet beneficence. The right foot resting on the left thigh showed a life-like firmness in the curve between the ankle and the toes. Similarly the hand, specially the left hand showed a life-like rendering of flesh in stone. So I gazed on and on at the figure of calm compassion and Serene Bliss.

About 500 years ago the Image was discovered by a cowherd, whose one cow on return home gave no milk. Suspecting that some one milked her in grazing, he watched her and found that she repaired to a spot, stood quietly there and milk flowed from her as if unseen hands were milking. This phenomenon occured from day to

day. The cowherd felt that this was due to some God on the spot. He got together some men and started digging the spot. After the digging proceeded for some time, a voice came from below; "Slowly ! Slowly ! The spade therefore worked carefully and it was found that it had touched the Image, and but for the supernatural warning the Image would have been injured. The delighted cowherds carefully seperated the Image from its earthly prison, wondered at it and worshipped it.

When the news got abroad and Jainas found it to be an image of their Lord Mahavira they came and tried to shift the Image but about 900 chariots broke under it and when they got voluntary consent of the cowherd and he touched the reins only then they succeeded in moving it first to a modest temple.

His Highness the Maharaja of Bharatpur sentenced his treasurer to be shot dead with a gun. The treasurer was perhaps innocent and in his hopelessness, he invoked the assistance of the image vowing that he would dedicate Rs. 50,000 if he escaped death from the gun. The next morning when the man was to be shot, gun was fired at him, but it would not go. The man was saved. The matter being reported to the Maharaja, he ordered that the treasurer should be shot next day. The treasurer fearing to lose his life which he believed to have been saved by Lord Mahavira in this miraculous manner, again passed his whole time in weeping and supplicating to the Lord to save him again and he also vowed to increase his votive offering of the preceeding day from Rs. 50,000 to Rs. 75,000. The next day also

the gun though fired, refused to go and kill the man. Annoyed by this the Maharaja ordered the man to be shot dead a third time. Fear overpowered the condemned man but Faith filled his heart; his soul ran for protection to the Lord once more, raising his offering also from Rs. 75,000 to one lac. The third day also the gun refused to kill the condemned. Now the Maharaja's anger turned into surprise. He ordered for the release of the treasurer and called him to himself and inquired: "Who is your Protector"? The man answered "Lord Mahavira". The Maharaja was satisfied and he himself also denoted hand-some money with which the present central temple of Lord Mahavira has been built. Thus the Image came to be installed for good in its present position.

His Holiness the Battaraka, priest of the temple was given almost Royal Honours even by the Mohammedan Emperors. One of its Battarakas was credited with having possessed a Magic Carpet like the one mentioned in the Arabian Nights, which could take a man to any place where he wished to go. Once a Mohammedan king from Delhi sent a deputation to invite the Bhattarka to his special Durbar at Delhi. The deputation took two months to reach the Bhattarka, but the Bhattarka sat on his huge Magic Carpet reached the Imperial Capital in three or four days' time. The king was surprised. He well received the Bhattarka but refused to allow a Royal Palanquin to him in the procession. But by a Miracle the Bhattarka managed to make his Palanquin to go on the top of the king's own Palanquin and over the palace itself. The last Bhattarka Mahendra Kirti ji also dabbled in

white or black magic. It is said that once he had a vision of a Devi or Goddess who came to be his as a result of his incantations[1].

The most ordinary miracles[2] known now are: The cowherds all round pray for cows etc. to become milking and for butter and ghee to be produced. The first milk and ghee to be offered to the Lord. Maunds and maunds of ghee and milk are thus offered at the Mela on Chaitra Shukla 15 and the chariot is taken out on Baisakh Badi 1. The Mainas and Gujars come in great number and Nizam himself moves the chariot of Lord Mahavira.

It is proved even now in many Jain and non Jain cases that any wish devoutly and faithfully wished here finds its fulfilment with-in one year[3].

Lord Mahavira and Socialism.

Pro. Dr. H. S. Bhattacharya, M. A., L. B., Ph. D.

The problem of problems to-day is how to stop the struggle between the rich and the needy. The people of

1. *Voice of Ahinsa, Aligang, Vol I. Part II P. 27—30.*
2. Atishaya Kshetras or Miracle places are not mere myth and idle imaginations. These are not only in India but also in Greece, Rome, France, Germany, Mexico, America and indeed in all the countries of the world. Countless vows and votive offerings made to Khwaja Moinuddin Chishti of Ajmer, annual pilgrimage to Lourdes in France, many votive offerings to the Golden image of the Holi Virgin in her famous church at Marseilles and many Wishing Wells in England are a few instances.—*VoA. Vol. I Part II. P. 30.*
3. My various wishes are being fulfilled and if any one doubts, he may try himself having full faith and confidence in Lord Mahavira. He will wonder for immediate effect:—Author.

wealthy section have plenty of food, clothing and bank balances yet they are struggling hard to aungment and increase what they have had, struggling restlessly. On the other hand there is the sweeting mass, toiling and moiling for scanty meals. There is again a third class of men, the so called middle class people, who have got to put up the appearance of the wealthy section whereas in reality they are as poor, if not poorer than the labour class, and their condition is really miserable.

One view in this connection has been that the needy and hungry exploited mass should openly rise up and snatch away the riches of the rich by force. The other is to vest all wealth in the state to take away the excess wealth from the rich and distribute it in accordance with the needs of the people. The present day socialism suggests that every man at certain stage of his life should stop to earn more.

The life of the great Jaina Teacher Shri Vira shows that from his very childhood, he was extremely unaggressive and non-acquiring disposition. For one full year before his Renunciation of the world, he was giving away all his wealth and at the time of asetic life he distributed the very clothes and ornamnets which he had on his body and when he attained the final self-realisation, he went on without any food.

He gave away all that he did not want, not because he was compelled to do so but because of his own free will and choice. The life of Shri Vira thus teaches us a lesson, which the modern Socialism would profit by always remembering that in order that a human being may voluntarily consent for an equal distribution of wealth, his character and not merely external atmosphere should be built up in a appropriate manner.

Shri Vira, keeping nothing for himself, reduced his necessaries to their barest minimum—In the words of Thomas Carlyle, made his "claim of wages a zero." It is true that the people of this materialistic age would not be able to practise renunciation to the extent and the manner done by Shri Vira, but unquestionably, He is the transcendent ideal to be followed as much faithfully and closely as possible. Some amount of renunciation or Aparigraha[1] as it is called in the Jaina Ethics should be the fundamental principle of all the socialist philosophy and the motto of the socialist should be **Live and Let live** like that of Shri Vira[2].

Christianity was taken from Jainism.

Miss. Elizabeth Frazer.

Jainism is the only non-allegorical religion—the only creed that is a purely scientific system, which insists upon and displays a thorough understanding of the problem of life and soul. It was founded by omnsiscient men. No other religion can lay claim to this distinction.

Jainism is the only religious system that recognises clearly the truth that religion is a science. It is the only man-made religion, the only one that reduces everything to the iron laws of nature and with modern science.[1] On a scientific basis it is worth-while to investigate the Jain

1. Jainism has provided 'Parigraha Parimana Varata'—the vow of setting a limit to the maximum wealth and property, which a Jain house-holder is to fix before-hand. according to reasonable estimate of his needs, to which he would never exceed. If and when he has reached that limit he will try to earn no more. If the earnings come inspite of it, he would devote the surplus to relief sufferers in order to be fair to the individual, society and country——Pro. Dr. Hira Lal: What Jainism Staud for? P. 11.
2. Abridged from VoA. Vol. II. P. 64.

claims that full of penetrating all elucidating light is to be found only in Jainism[2]. It is perfectly true when the Jains say that Religion is originated with man and that the first deified man of every cycle of time is the founder of Religion. Whenever a Tirthankara arises, He re-establishes the scientific truth concerning the nature of life and these truths are collectively termed Religion.' Since Jainism is the only religion that lays claim to having produced omniscient-men, it does seem plain that religion does originate from the Jains; that Rishabha Deva the first perfect man of current cycle of time was the founder as even the Hindus admit. (Bhagwat Puran 27)

Christianity was taken from India in the 6th. Century B. C. Its doctrines agree in every particular with Jainism, and as Mr C. R. Jain has shown in his Interpretation of St. John's Revelation, the twenty-four Elders of that book are the 24 Tirthankaras of Jainism. The countless number of Siddhas (perfect souls) in Jainism are also to be found in the Book of Revelation. The same conceptions of Karma, of the inflow and stoppage and riddance of matter in relation to karmic activity, are common to both the relegions. The description of the condition of the soul in Nirvana is identically the same and the same is the case with the natural attributes of the soul substance. 'This is a 100 % agreement'. There may be some agreement between Christianity and other religion on a few points, but never cent-percent. This is sufficient to show that **Christianity was taken from Jainism.** European scholarship has also shown that the seeds of Christianity were sown centuries before the supposed date of Jesus. Bearing all these facts in mind, there can be no doubt that Christianity originated in the time of Mahavira himself[2].

1. 'Jainism and Science.' This book's page 119—125.
2. Scientific interpretation of Christianity, reprinted in Sramana Mahavira. (Jain Sidhanta Society, Panjara Pole) Ahmedabad) —*Vol, Part I, P. 89—95.*

What is Jainism ?

VidyaVaridhi Shri C. R. Jain, Bar-at-Law.

Jainism is a science and not a code of arbitary rules and capricious commandments. It is a **Practical Religion of Living Truth**. It is a religion of men founded by men, for the benefit of men and all living beings. It goes to nature direct for the study of all kinds of problems subjecting everything to minute enquiry and critical examination. It is a source of everlasting infinite happiness and a true path of real truth. It is a source of independence, freedom, self-realisation, self-responsibility and a brave non-injuriousconduct.

Jainism maintains that all men, women and living beings in the Universe possess abilityof fulness and perfection, which is marred by the operation of their own action & by their own efforts, they may check the further influx of karmic matter & destroy its past bonds. The life of Jain Tirthankaras, who attained omniscience by their own efforts in the very manhood is an experienced example for all worldly creatures that Jainism enables even one however lowly or vicious; to enjoy ever-lasting infinite bliss, infin te knowledge and infinite energy

1, For details see his 'What isJainism?' Priced Rs.2/- Published by All India Digamber Jain Parishad, Dariba Kala, Delhi, *fromwhere a price-list of other English Jain books may also* be had free.

The way for man to become God.*

Dharma Bhushan Brahamchari Shital Prasada ji.

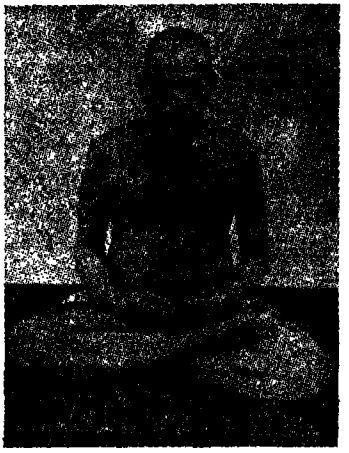

All living beings seek happiness. Sensual pleasure is essentially impermanent, depends on the contract of other things, envolves trouble in its obtainment and creates uneasiness after its experience. What one really wants is undying and unabating happiness.

The pleasure one experiences comes from within and is independent of the senses. The real nature of every soul never-the-less one resides in the form of an ant and the other in that of elephant or one rests in a human frame and the other is a super-human-body, is perfection having ability of obtaining infinite vision, infinite knowledge, infinite energy and infinite bliss.

Question may be raised—When all the souls are alike and nature of one soul (JIVA) is identical with that of other, why is one poor, ugly, miserable, unhealthy, weak and illeterate and the other rich, beautiful, happy, healthy, brave and intelligent ?

Jainism has scientifically proved that just as a heated iron-ball takes up water particles when immersed

*Must study, "Jainism is a Key to True happiness Priced Re. 1/- Published by Secy Dig. Jain Atishya Mahavir ji, Mahavira Park Road, Jaipur.

with water, similarly the material particles of Karmoi Matter[1] (AJIVA) inflow (ASRAVA) towards the soul on account of wrong belief[2], Vowlessness[3], Passions[4], and Yoga[5]. If the inflow of the Karmas is not checked, they are attracted, accumulated and bound with the soul in the form of a fine Karmic body[6]. This bondage of Karma

1. There are 8 main kinds of Karmas:—
2. KNOWLEDGE OBSCURING,(ज्ञानावरणीय कर्म) which obscures soul's knowledge.

(ii) CONATION OBSCURING, (दर्शनावरणीय कर्म) which obscures nature of soul's conation,

(iii) DELUDING,(मोहनीय कर्म) which produces wrong belief and passionate thought activities of anger, pride, deceit, greed, etc.

(iv) OBSTRUCTIVE,(अन्तराय कर्म) which obstructs soul's power and capacity to earn.

(v) AGE, (आयु कर्म) which keeps the soul entangled in a body for a fixed time.

(vi) BODY MAKING,(नामकर्म) which makes good or bad bodies.

(vii) FAMILY DETERMING, (गौत्र कर्म) which takes the soul to a high or low social condition.

(viii) FEELING PRODUCING,(वेदनीय कर्म)which tends to produce pains miseries and diseases.

The first four Karmas obscure the natural attributes of the soul, so are called DESTRUCTIVE (घातिया कर्म)The other four do not obscure the nature of the soul so are called NON-DESTRUCTIVE. (अघातिया कर्म)

For details see 'Gomatasar Karamkand' Priced Rs. 5/8/- in English & Mahabhanda Vol I & II. both for Rs.20/- in Hindi.

2. WRONG BELIEF, (मिथ्यात्व which is of five kinds:—

(i) ONE SIDED CONVICTION,(एकान्त) every thing has many qualities and natures. To accept some and reject the others is a one sided view.

के विरोधी पशु-पक्षी भी आपस में प्रेम के साथ एक ही स्थान पर मिल-जुल कर धर्म उपदेश सुनते हैं। पिछले जमाने की बात जाने दीजिये, आज के पंचम काल की बीसवीं सदी में जैनाचार्य श्री शान्तिसागर जी (जो आज कल भी जीवित हैं) के शरीर पर पाँच बार सर्प चढ़ा और अनेक बार तो दो दो घण्टे तक उनके शरीर पर अनेक प्रकार की लीला करता रहा। परन्तु वे ध्यान में लीन रहे और सर्प अपनी भक्ति और प्रेम की श्रद्धाँजलि भेंट करके बिना किसी प्रकार की बाधा पहुँचाये चला गया[1]।

जयपुर के दीवान श्री अमरचन्द व्रती श्रावक थे। उन्होंने मांस खाने और खिलाने का त्याग कर रखा था। चिड़ियाघर के शेर को मांस खिलाने के लिए खर्च की मंजूरी के कागजात उनके सामने आये तो उन्होंने मांस खिलाने की आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। चिड़ियाघर के कर्मचारियों ने कहा कि शेर का भोजन तो मांस ही है, यदि नहीं दिया जायेगा तो वह भूखा मर जायेगा। दीवान साहब ने कहा कि भूख मिटाने के लिए उसे मिठाई खिलाओ। उन्होंने कहा कि शेर मिठाई नहीं खाता। दीवान अमर चन्द जैन ने कहा कि हम खिलावेंगे। वह मिठाई का थाल लेकर कई दिन के भूखे शेर के पिंजरे में भयरहित घुस गये और शेर से कहा कि यदि भूख शान्त करनी है तो यह मिठाई भी तेरे लिये उपयोगी है, और यदि मांस ही खाना है तो मैं खड़ा हूं मेरा माँस खालो। शेर भी तो आखिर जीव ही था। दीवान साहब की निर्भयता और अहिंसामयी प्रेमवाणी का उस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसने सबको चकित करते हुए शान्त भाव से मिठाई खाली।

श्री विवेकानन्द के मासिक पत्र "प्रबुद्ध भारत" का कथन है

---

१. आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज का चरित्र, पृ० २३-२४।

कि एण्डरसन नाम का एक अंग्रेज जयदेवपुर के जंगल में शिकार खेलने गया, वहाँ एक शेर को देख कर उनका हाथी डरा, उसने साहब को नीचे गिरा दिया। एण्डरसन ने शेर पर दो तीन गोलियां चलाईं किन्तु निशाना चूक गया। अपने प्राणों की रक्षा के हेतु शेर ने साहब पर हमला कर दिया। साहब प्राण बचाने को भाग कर पास की एक झोंपड़ी में घुस गये। वहाँ एक दिगम्बर साधु विराजमान थे। शेर भी शिकारी का पीछा करते हुए वहां आया परन्तु दिगम्बर साधु को देख वह शान्त होगया। शिकारीको कुछ न कह, वह थोड़ी देर वहाँ चुपचाप बैठकर वापस चला आया तो एण्डरसन ने जैन साधु से इस आश्चर्य का कारण पूछा तब नग्न मुनी ने कहा—"जिसके चित्त में हिंसा के विचार नहीं उसे शेर या सांप आदि कोई भी हानि नहीं पहुंचाता, जंगली जानवरों से तुम्हारे हिंसक भाव हैं इसलिये वे तुम्हारे ऊपर हमला करते हैं[१]"। मुनिराज की इस अहिंसामई वाणी का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसी रोज से उस अंगरेज ने हमेशा के लिये शिकार खेलने का त्याग कर दिया और सदा के लिये शाकाहारी बन गया। चटागांव में एण्डरसन के इस परिवर्तन को लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है[२]।

"एक अंग्रेज विद्वान् मिस्टर पाल्वृन्टन का कथन है कि महर्षि रमण तप में लीन थे। रात्रि में उन्होंने एक शेर देखा जो भक्ति-पूर्वक रमण के पांव चूम रहा था व बिना कोई हानि पहुँचाये सुबह होने से पहले वहां से चला गया। एक दिन उन्होंने रमण महाराज के आश्रम में एक काला सांप फुंकारें मारता हुआ दिखाई पड़ा

१-२. "One, who has no Hinsa, is never injured by tigers or samakes, because you have feelings of Hinsa in your mind, you are attacked by wild animals."

—Jain Saint:- Prabuddha Bharata (1934) P. 125-126.

जिसे देखते ही उन्होंने चीख मारी, जिसे सुन कर रमण का एक शिष्य वहां आगया, और उस जहरीले काले सांप को हाथों में लेकर उसके फणे से प्यार करने लगा । अंग्रेज ने आश्चर्य से पूछा कि क्या तुम्हें इससे भय नहीं लगता ? उसने कहा, जब इसको हमसे भय नहीं तो हमें इससे भय कैसा ? जहां अहिंसा और प्रेम होता है वहां भयानक पशु तक भी योग-शक्ति से प्रभावित होकर अपनी शत्रुता को भूलकर विरोधियों तक से प्रेमव्यवहार करने लगते हैं[1]"।

वास्तव में अहिंसा धर्म परम धर्म है और यदि जैन धर्म को विश्व धर्म होने का अवसर मिले तो अहिंसा धर्म को अपना कर यही दुःखभरा संसार अवश्य स्वर्ग हो जाये[2] ।

अनेकान्तवाद तथा स्याद्वाद

"The Anekantvada or the Syadvada stands unique in the world's thought If followed in practice, it will spell the end of all the warring beliefs and bring harmony and peace to mankind."

Dr. M. B. Niyogi, Chief Justice Nagpur: Jain Shasan Int.

हर एक वस्तु में बहुत से गुण और स्वभाव होते हैं। ज्ञान में तो उन सब को एक साथ जानते की शक्ति है परन्तु वचनों में उन सब का कथन एक साथ करने की शक्ति नहीं। क्योंकि एक समय एक ही स्वभाव कहा जा सकता है । किसी पदार्थ के समस्त गुणों को एक साथ प्रकट करने के विज्ञान को जैन धर्म अनेकान्त अथवा स्याद्वाद के नाम से पुकारता है । यदि कोई पूछे कि संखिया जहर है या अमृत ? तो स्याद्वादी यही उत्तर देगा कि जहर भी है अमृत भी तथा जहर और अमृत दोनों भी है।

---

१. उर्दू मासिक पत्र 'ओ३म्' (जून सन् १९५०) पृ० २० ।

२. Prof. Dr. Charolotta Krause : This book's P. 110.

अज्ञानी इस सत्य की हँसी उड़ाते हैं कि एक ही वस्तु में दो विरुद्ध बातें कैसे ? किन्तु विचारपूर्वक देखा जाये तो संखिया से मर जाने वाले के लिए वह जहर है, दवाई के तौर पर खाकर अच्छा होने वाले रोगी के लिये अमृत है। इसलिये संखिये को केवल जहर या अमृत कह देना पूरा सत्य कैसे ? कोई पूछे, श्री लक्ष्मण जी महाराजा दशरथ के बड़े बेटे थे या छोटे ? श्री रामचन्द्र जी से वे छोटे थे और भरत जी से बड़े और दोनों की अपेक्षा से छोटे भी, बड़े भी !

कुछ अन्धों ने यह जानने के लिये कि हाथी कैसा होता है, उसे टटोलना शुरू कर दिया। एक ने पांव टटोल कर कहा कि हाथी खम्बे जैसा ही है, दूसरे ने कान टटोल कर कहा कि नहीं, छाज जैसा ही है, तीसरे ने सूंड टटोल कर कहा कि तुम दोनों नहीं समझे वह तो लाठी ही के समान है, चौथे ने कमर टटोल कर कहा कि तुम सब झूठ कहते हो हाथी तो तख्त के समान ही है। अपनी अपनी अपेक्षा में चारों को लड़ते देख कर सुनाखे ने समझाया कि इसमें झगड़ने की बात क्या है ? एक ही वस्तु के संबंध एक दूसरे के विरुद्ध कहते हुए भी अपनी २ अपेक्षा से तुम सब सच्चे हो, पांव की अपेक्षा से वह खम्बे के समान भी है, कानों की अपेक्षा से छाज के समान भी है, सूंड की अपेक्षा से वह लाठी के समान भी है और कमर की अपेक्षा से तख्त के समान भी है। स्याद्वाद सिद्धान्त ने ही उनके झगड़े को समाप्त किया।

अंगूठे और अंगुलियों में तकरार हो गया। हर एक अपने २ को ही बड़ा कहता था। अंगूठा कहता था मैं ही बड़ा हूँ, रुक्के-तमस्सुक पर मेरी वजह से ही रुपया मिलता है, गवाही के समय भी मेरी ही पूछ है। अंगूठे के बराबर वाली उंगली ने कहा कि हकूमत तो मेरी है, मैं सब को रास्ता बताती हूँ, इशारा मेरे से ही

होता है मैं ही बड़ी हूँ। तीसरी बीच वाली अंगुली बोली कि प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? तीनों बराबर खड़ी हो जाओ और देख लो, कि मैं ही बड़ी हूँ। चौथी ने कहा कि बड़ी तो मैं ही हूँ जो संसार के तमाम मंगलकारी काम करती हूँ। विवाह में तिलक मैं ही करती हूं, अंगूठी मुझे पहनाई जाती है, राजतिलक मैं ही करती हूं। पांचवी कन्नो अंगुली बोली कि तुम चारों मेरे आगे मस्तक झुकाती हो, खाना, कपड़े पहिनना, लिखना आदि कोई काम करो मेरे आगे झुके बगैर काम नही चलता। तुम्हें कोई मारे तो मैं बचाती हूं। किसी के मुक्का मारना हो तो सब से पहले मुझे याद किया जाता है। मैं ही बड़ी हूं। पाँचों का विरोध बढ़ गया तो स्याद्वादी ने ही उसे निबटाया कि अपनी २ अपेक्षा से तुम बड़ी भी हो, छोटी भी हो बड़ी तथा छोटी दोनों भी हो।

ऋग्वेद,[1] विष्णुपुराण[2] महाभारत[3] में भी स्याद्वाद का कथन है। महर्षि पातञ्जलि ने भी स्याद्वाद की मान्यता की है[4]। परन्तु "जैनधर्म में अहिंसा तत्व जितना रस्य है उससे कहीं अधिक सुन्दर स्याद्वाद-सिद्धान्त है"[5] "स्याद्वाद के बिना कोई वैज्ञानिक तथा दार्शनिक खोज सफल नहीं हो सकती[6]"। "यह तो जैनधर्म की महत्त्वपूर्ण घोषणा का फल है"[7]। "इससे सर्व सत्य का द्वार

---

१ इन्द्रं मित्रं वरुणमाग्नेमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
—ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ मंत्र ४६।

२ वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्या जमाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद् वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः॥—विष्णुपुराण

३ सर्वं संशयितमिति स्याद्वादिनः सप्तभंगीन यशाः।
—महाभारत अ० ६, पाद २ श्लोक ३३-३६।

४ 'मीमांसा श्लोकवार्तिक' पृष्ठ ६१६ श्लोक २१, २२, २३।

५ आचार्य आनन्दशङ्कर ध्रुव प्रोवाइसचांसलर हिन्दूयूनिवर्सिटी:जैनदर्शन वर्ष २ १८१

६-७ गंगाप्रसाद मेहता : जैनदर्शन वर्ष २, पृ० १८१।

खुल जाता है"[1] । "न्यायशास्त्रों में जैनधर्म का स्थान बहुत ऊँचा है"[2] । "स्याद्वाद तो बड़ा ही गम्भीर है"[3] "यह जैन धर्म का अभेद्य किला है, जिस के अन्दर वादी-प्रतिवादियों के मायामयी गोले प्रवेश नहीं कर सकते[4] । "सत्य के अनेक पहलुओं को एक साथ प्रकट करने की सुन्दर विधि है[5]" । "विरोधियों में भी प्रेम उत्पन्न करने का कारण है[6]" । "भिन्न-भिन्न धर्मों के भेद भावों को नष्ट करता है[7]" । "विस्तार से जानने के लिये आप्त-मीमांसा[8] अष्टसहस्री[9], स्याद्वाद मञ्जरी[10] आदि जैन ग्रन्थों के स्वाध्याय करने का कष्ट करें ।

---

१. Hirman Jacobi: Jain Darshan, vol. II P. 183.

२-३. Dr Thomas Chif Librarian, India Office Library, London : Jain Darshan P. 183.

४. महामहोपाध्याय आचार्य स्वामी राममिश्र : जैनधर्म महत्व, पृ० १५८ ।

५. Prof. A. C. Bhattacharya: Jain Antiquary, vol, IX P 1 to 14.

६. Anekantavad is philosophy of toleration, a rational exhortation and fervent appeal to realize truth in its manifoldness of broadening our views and saving from narrowness out- look. As such Jainism is rational catholicism.

—Satyamshu Mohan Mukhopadhyaya : (J.M. Mandal 52) P. 43.

७. Anekantvada is the master- key of opening the heart-locks of different religions. It is the main fountain of temporal and spiritual progress. It is the theory of CUMULATIVE truth.

—Miss Dappne Mc Dowall (Germany): The Jaina Religion & Literature, vol. I P. 160-176.

८-१०. दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत से हिंदी और अंग्रेजी में मिल सकती हैं ।

Trees give furits, plants flowers, rivers water to anyone wether a man, beast or bird. They do not enjoy themselves, but for the benifit of others. Man is the hi:hest creatute, his serviees to others must be with heart-love, without any reg rd of r:venge, gain or reputation in the same spirit as mother's to her children. —Jainism A Key to True Happiness, P. 116.

जैनधर्म का तो एक-एक अङ्ग साम्यवाद से भरपूर है। हर प्रकार की शङ्का तथा भय को नष्ट करके दूसरों की सेवा करना 'निश्शंकित' नाम का पहला सम्यक्त्व अङ्ग है। संसारी भोगों की इच्छा न रखते हुए केवल मनुष्यों से ही नहीं बल्कि पशु पक्षी तक को अपने समान जान कर जग के सारे प्राणियों से बांछारहित प्रेम करना 'निःकांक्षित' नाम का दूसरा अङ्ग है। अधिक से अधिक धन, शक्ति और ज्ञान होने पर भी दुखी दरिद्री गलीच तक से भी घृणा न करना, 'निर्विचिकित्सा' नाम का तीसरा अङ्ग है। किसी के भय या लालसा से भी लोकमूढ़ता में न बह कर अपने कर्त्तव्य से न डिगना 'अमूढ़दृष्टि' नाम का चौथा अङ्ग है। अपने गुणों और दूसरों के दोषों को छिपाना 'उपगूहन' नाम का पाँचवा अङ्ग है। ज्ञान, श्रद्धान तथा चरित्र से डिगने वालों को भी छाती से लगा कर फिर धर्म में स्थिर करना 'स्थितिकरण' नाम का छठा अङ्ग है। महापुरुषों और धर्मात्माओं से ऐसा गाढ़ा अनुराग रखना जैसा गाय अपने बछड़े से करती है और विनयपूर्वक उनकी सेवा भक्ति करना 'वात्सल्य' नाम का सातवां अङ्ग है। तन, मन, धन से धर्म प्रभावना में उत्साहपूर्वक भाग लेना 'प्रभावना' नाम का आठवां अङ्ग है। जो मन, वचन और काय से इन आठों अङ्गों[1] का पालन करते हैं, वही सम्यग्दृष्टि जैनी और स्याद्वादी हैं।

१. आठों अङ्गों को विस्तार रूप से जानने के लिये श्रावक-धर्म-संग्रह, पृ० ४३-६४।

कर्मवाद

The theory of Karma as minutely discussed and analysed is quite peculiar to Jainism. It is its unique feature. —Prof. Dr. B. H. Kapadia: VOA.vol II P.228.

कोई अधिक मेहनत करने पर भी बड़ी मुश्किल से पेट भरता है और कोई बिना कुछ किये भी आनन्द लूटता है, कोई रोगी है कोई निरोगी। कुछ इस भेद का कारण भाग्य तथा कर्मों को बताते हैं तो कुछ इस सारे भार को ईश्वर के ही सर पर थोप देते हैं कि हम बेबश हैं, ईश्वर की मर्जी ऐसी ही थी। दयालु ईश्वर को हम से ऐसी क्या दुश्मनी कि उसकी भक्ति करने पर भी वह हमें दुःख और जो उसका नाम तक भी नहीं लेते, हिंसा तथा अन्याय करते हैं उनको सुख दे ?

जैन धर्म ईश्वर की हस्ती से इन्कार नहीं करता, वह कहता है कि यदि उस को संसारी झंझटों में पड़ कर कर्म तथा भाग्य का बनाने या उसका फल देने वाला स्वीकार कर लिया जावे तो उसके अनेक गुणों में दोष आजाता है और यह संसारी जीव केवल भाग्य के भरोसे बैठ कर प्रमादी हो जाये। कर्म भी अपने आप आत्मा से चिपटते नहीं फिरते। हम खुद अपने प्रमाद से कर्म-बन्ध करते और उनका फल भोगते हैं। अपने ही पुरुषार्थ से कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु हम तो स्त्री, पुत्र, तथा धन के मोह में इतने अधिक फंसे हुए हैं कि क्षण भर भी यह विचार नहीं करते कि कर्म क्या हैं ? क्यों आते हैं ? और कैसे इनसे मुक्ति हो कर अविनाशी सुख प्राप्त हो सकता है ?

बड़ी खोज और खुद तजरबा करने के बाद जैन तीर्थंकरों ने यह सिद्ध कर दिया कि राग-द्वेष के कारण हम जिस प्रकार का संकल्प-विकल्प करते हैं, उसी जाति के अच्छे या बुरे कार्माण-

वर्गणाएँ (Karmic Molecules) योग शक्ति से आत्मा में खिंच कर आजाती हैं। श्रीकृष्ण जी ने भी गीता[1] में यही बात कही है कि जब जैसा संकल्प किया जावे वैसा ही उसका सूक्ष्म व स्थूल शरीर बन जाता है और जैसा स्थूल, सूक्ष्म शरीर होता है उसी प्रकार का उसके आस-पास का वायु मण्डल होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह बात सिद्ध है कि आत्मा जैसा संकल्प करता है वैसा ही उस संकल्प का वायु मण्डल में चित्र उतर जाता है[2]। अमरीका के वैज्ञानिकों ने इन चित्रों के फोटू भी लिये हैं[3], इन चित्रों को जैन दर्शन की परिभाषा में कार्माणवर्गणाएँ कहते हैं[4]। जो पाँच प्रकार के मिथ्यात्व[5] बारह प्रकार के अव्रत[6], २५ प्रकार के कषाय[7], १५ प्रकार के योग[8], ५७ कारणों से आत्मा की ओर इस तरह खिंच कर आ जाते हैं जिस तरह लोहा चुम्बक की योग शक्ति से आप से आप खिंच आता है और जिस तरह चिकनी चीज पर गरद आसानी से चिपक जाती है, उसी तरह कषायरूपी आत्मा से कर्म रूपी गरद जल्दी से चिपट जाती है। कर्मों के इस तरह खिंच कर आने को जैन धर्म में "आस्रव" और चिपटने को बन्ध कहते हैं। केवल किसी कार्य के करने से ही कर्मों का आस्रव या बन्ध नहीं होता बल्कि पाप या पुण्य के जैसे विचार होते हैं उन से उसी प्रकार का अच्छा या बुरा आश्रव व बन्ध होता है।

---

१. ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥
—गीता अ० ५, श्लोक ६२-६३

२-४. ईश्वर मीमांसा (दि० जैन सङ्घ) पृ० ६१२।

५-८. "The way for man to become God." This book's vol.

९ विस्तार के लिये 'महाबन्ध' 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' आदि जैन ग्रंथ देखिये।

इस लिये जैन धर्म में कर्म के भावकर्म व द्रव्य कर्म नाम के दो भेद हैं। वैसे तो अनेक प्रकार के कर्म करने के कारण द्रव्य कर्म के ८४ लाख भेद हैं जिन के कारण यह जीव ८४ लाख योनियों में भटकता फिरता है (जिनका विस्तार 'महाबन्ध' व 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' आदि हिन्दी व अंग्रेजी में छपे हुए अनेक जैन ग्रन्थों में देखिये) परन्तु कर्मों के आठ मुख्य भेद इस प्रकार हैं—

१. **ज्ञानावरणी**—जो दूसरों के ज्ञान में बाधा डालते हैं, पुस्तकों या गुरुओं का अपमान करते हैं, अपनी विद्या का मान करते हैं, सच्चे शास्त्रों को दोष लगाते हैं और विद्वान् होने पर भी विद्या-दान नहीं देते, उन्हें ज्ञानावरणी कर्मों की उत्पत्ति होती है जिससे ज्ञान ढक जाते हैं और वे अगले जन्म में मूर्ख होते हैं। जो ज्ञान-दान देते हैं, विद्वानों का सत्कार करते हैं, सर्वज्ञ भगवान् के वचनों को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते हैं, उनका ज्ञानावरणी कर्म ढीला पड़ कर ज्ञान बढ़ता है

२. **दर्शनावरणी**—जो किसी के देखने में रुकावट या आंखों में बाधा डालते हैं, अन्धों का मखौल उड़ाते हैं उन के दर्शनावरणी कर्म की उत्पत्ति होकर आंखों का रोगी होना पड़ता है। जो दूसरे के देखने की शक्ति बढ़ाने में सहायता देते हैं, उनका दर्शनावरणी कर्म कमजोर पड़ जाता है।

३. **मोहनीय**—मोह के कारण ही राग-द्वेष होता है जिस से क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों की उत्पत्ति होती है, जिसके वश हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह और कुशीलता पांच महापाप होते हैं, इस लिये मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा और महादुःखदायक है। अधिक मोह वाला मर कर मक्खी होता है, संसारी पदार्थों से जितना मोह कम किया जाये उतना ही मोहनीय कर्म ढीले पड़

कर उतना ही अधिक सन्तोष, सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है।

४. अन्तराय—जो दूसरों के लाभ को देख कर जलते हैं, दान देने में रुकावट डालते हैं, उन को अन्तराय कर्म की उत्पत्ति होती है। जिस के कारण वह महा दरिद्री और भाग्यहीन होते हैं। जो दूसरों को लाभ पहुंचाते हैं, दान करते कराते हैं, उन का अन्तरायकर्म ढीला पड़ कर उन को मन-वांछित सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति बिना इच्छा के आप से आप हो जाती है।

५. आयुकर्म—जिस के कारण जीव देव, मनुष्य, पशु नरक चारों गतियों में से किसी एक के शरीर में किसी खास समय तक रुका रहता है। जो सच्चे धर्मात्मा, परोपकारी और महासन्तोषी होते हैं, वह देव आयु प्राप्त करते हैं। जो किसी को हानि नहीं पहुँचाते, मन्द कषाय होते हैं, हिंसा नहीं करते वह मनुष्य होते हैं। जो विश्वासघाती और धोखेबाज होते हैं पशुओं को अधिक बोझ लादते हैं, उनको पेट भर और समय पर खाना पीना नहीं देते, दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा करते हैं वह पशु होते हैं। जो महाक्रोधी, महालोभी, कुशील, होते हैं झूठ बोलते और बुलवाते हैं, चोरी और हिंसा में आनन्द मानते हैं, हर समय अपना भला और दूसरों का बुरा चाहते हैं, वह नरक आय का बन्ध करते हैं।

६. नामकर्म—जिस के कारण अच्छा या बुरा शरीर प्राप्त होता है। जो निर्ग्रंथ मुनियों और त्यागियों को विनयपूर्वक शुद्ध आहार कराते हैं, विद्या, औषधि तथा अभयदान देते हैं, मुनि-धर्म का पालन करते हैं, उनको शुभ नाम कर्म का बन्ध हो कर

चक्रवर्ती, कामदेव, इन्द्र आदि का महा सुन्दर और मजबूत शरीर प्राप्त होता है[1]। जो श्रावक-धर्म[2] पालते हैं वे निरोग और प्रबल शरीर के धारी होते हैं। जो निर्ग्रंथ मुनियों और त्यागियों की निन्दा करते हैं, वे कोढ़ी होते हैं, जो दूसरों की विभूति देख कर जलते हैं कषायों और हिंसा में आनन्द मानते हैं वे बदसूरत, अङ्गहीन, कमजोर और रोगी शरीर वाले होते हैं।

७. **गोत्रकर्म**—जो अपने रूप, धन, ज्ञान, बल, तप, जाति, कुल या अधिकार का मान करते हैं, धर्मात्माओं का मखोल उड़ाते हैं, वे नीच गोत्र पाते हैं और जो सन्तोषी शीलवान् होते हैं अर्हंतदेव, निर्ग्रंथ मुनि तथा त्यागियों और उनके वचनों का आदर करते हैं वे देव तथा क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य आदि उच्च गोत्र में जन्मते हैं।

८. **वेदनीयकर्म**—जो दूसरों को दुःख देते हैं, अपने दुःखों को शान्त परिणामों से सहन नहीं करते, दूसरों के लाभ और अपनी हानि पर खेद करते हैं, वह असाता वेदनीय कर्म का बन्ध करके महादुःख भोगते हैं और जो दूसरों के दुःखों को यथाशक्ति दूर करते हैं, अपने दुःखों को सरल स्वभाव से सहन करते हैं, सब का भला चाहते हैं, उन्हें साता वेदनीय कर्म का बन्ध होने के कारण अवश्य सुखों की प्राप्ति होती है।

इन आठ कर्मों में से पहले चार आत्मा के स्वभाव का घात करते हैं इस लिये 'घातिया' और बाकी चार से घात नहीं होता, इस लिये इन को 'अघातिया' कर्म कहते हैं।

पाँच समिति[3], पाँच महाव्रत[4], दश लाक्षण धर्म[5], तीन गुप्ति[6], बारह भावना[7] और २२ परीषहजय[8] के पालने से कर्मों के आस्रव का संवर होता है और बारह प्रकार के तप[9]

१-९. "The way for man to become God." This book's vol I.

तपने से पहले किये हुये चारों घातिया कर्मों का अपने पुरुषार्थ से, निर्जरा (नाश) करने पर आत्मा के कर्मों द्वारा छुपे हुये स्वाभाविक गुण प्रकट हो कर यही संसारी जीव-आत्मा अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, बल और सुख-शान्ति का धारी परमात्मा हो जाता है और बाकी चारों अघातिया कर्मों से भी मुक्त होने पर मोक्ष (SALVATION) प्राप्त करके अविनाशी सुख-शान्ति के पालने वाला सिद्ध भगवान् हो जाता है।

वीर-विहार और धर्म-प्रचार

"भ० महावीर का यह विहार काल ही उनका तीर्थ प्रवचन काल है जिस के कारण वह तीर्थङ्कर[1] कहलाये"।

—श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य : स्वयंभूस्तोत्र

मगधदेश की राजधानी राजग्रह में भगवान् महावीर का समवशरण कई बार आया, जहां के महाराजा श्रेणिक बिम्बसार ने बड़े उत्साह से भक्तिपूर्वक उनका स्वागत किया। महाशतक और विजय आदि अनेकों ने श्रावक व्रत लिये, अभयकुमार और इस के मित्र आर्द्रिक (Idrik) ने जो ईरान के राजकुमार थे, भगवान् महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर जैन मुनि हो गये थे[2]। लगभग ५०० यवन भी वीर प्रेमी हो गये थे[3]। फणिक (Phoenecia) देश के वाणिक नाम के सेठ ने तो जैन मुनि होकर[4] उसी जन्म से मोक्ष प्राप्त किया[4]।

---

१. Tirth is a fordable passage accross a sea. Because the Tirthankaras discover and establish such passaga accross the sea of 'Sansar'. They are given title of Tirthankara.

—What is Jainism ? P. 47.

२. Dictionary of Jain Byography (Arrah) P. 11 & 92.

३.४ भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३५, १३०।

विदेहदेश—राजगृह से भ० महावीर का समवशरण वैशाली आया, जहाँ के महाराजा चेटक उनके उपदेश से प्रभावित होकर सारा राज-पाट त्याग कर जैन साधु होगये थे[1] और इन के सेनापति सिंहभद्र ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे[2]।

वाणिज्यग्राम में जो वैशाली के निकट था भ० महावीर का समवशरण आया तो वहां के सेठ आनन्द और इनकी स्त्री शिवानन्दा आदि ने उन से श्रावक के व्रत लिये थे[3]।

अङ्गदेश की राजधानी चम्पापुरी (भागलपुर) में भ० महावीर का समवशरण आया तो वहां के राजा कुणिक ने बड़ा उत्साह मनाया[4]। वहां के कामदेव नाम के नगरसेठ ने उन से श्रावक के १२ व्रत लिये। सेठ सुदर्शन भी जैनी थे, रानी के शील का झूठा दोष लगाने पर राजा ने उनको शूली का हुक्म दे दिया तो सेठ सुदर्शन के ब्रह्मचर्य व्रत के फल से शूली सिंहासन बन गई, जिस से प्रभावित होकर राजा जैन मुनि हो गये[5]।

पोलासपुर में वीर-समवशरण आया तो वहाँ के राजा विजयसेन ने भ० महावीर का बड़ा स्वागत किया[6]। राजकुमार ऐवन्त तो उनके उपदेश से प्रभावित होकर जैन साधु हो गए थे[7], और शब्दालपुत्र नाम के कुम्हार ने श्रावक के व्रत लिये[8]।

कौशलदेश की राजधानी श्रावस्ती (जिले गोंडे का सहट-महट) में वीर समवशरण पहुँचा तो वहां के राजा प्रसेनजित (अग्निदत्त) ने भक्तिपूर्वक भगवान् का अभिनन्दन किया[9]। लोग भाग्य भरोसे रहने के कारण साहस को खो बैठे थे, भ० महावीर के

१-९. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३०-१३२।

दिव्योपदेश से उनका अज्ञान रूपी अन्धकार जाता रहा और वे धर्म पुरुषार्थी बन गये[1] ।

वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी (इलाहाबाद) में वीर समवशरण आया तो वहाँ के राजा शतानीक वीर उपदेश से प्रभावित होकर जैन मुनि होगये[2] ।

कलिंगदेश (उड़ीसा) में समवशरण आया तो वहां के राजा जितशत्रु ने बड़ा आनन्द मनाया[3] और सारा राज-पाट त्याग कर जैन साधु होगये थे[4] । इस ओर के पुण्ड, बङ्ग, ताम्रलिप्ति आदि देशों में भी वीर-विहार हुआ था[5], जिस से वहां के लोग अहिंसा के उपासक बन गये थे[6] ।

हेमाङ्गदेश—(मैसूर) में वीर-समवशरण पहुँचा तो वहाँ के राजा जीवन्धर भगवान् के उपदेश से प्रभावित हो, संसार त्याग कर जैन साधु हो गये थे[7] ।

अश्मकदेश की राजधानी पोदनपुर में वीर समवशरण आया तो वहां का राजा विद्रदाज उनका भक्त होगया[8] ।

राजपूताने में वीर समवशरण के प्रभाव से वहां के राजा व राणा अहिंसा प्रेमी बन गये[9] । यह भ० महावीर के प्रचार का ही फल है कि अपनी जान जोखिम में डाल कर देश की रक्षा करने वाले आशाशाह और मामाशाह जैसे जैन सूरवीर योद्धा वहां हुए[10] ।

मालवादेश की राजधानी उज्जैन में वीर समवशरण पहुँचा तो वहां के सम्राट चन्द्रप्रद्योत ने बड़ा उत्साह मनाया था[11] ।

सिन्धु सौवीर प्रदेश की राजधानी रोरूकनगर में वीर-समव-

१-११. भ० महावीर (कामताप्रसाद) पृ० १३३-१३४।

शरण पहुंचा तो वहाँ के राजा उदयन भ० महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर राज छोड़ कर जैन मुनि हो गये थे[1]।

दशार्ण देश में भ० महावीर का विहार हुआ तो वहाँ के राजा दशरथ ने उनका स्वागत किया[2]।

पाञ्चाल देश की राजधानी कम्पिला में भ० महावीर पधारे तो वहां का राजा "जय" उनसे प्रभावित होकर संसार त्याग कर जैन साधु हो गया था[3]।

सौर देश की राजधानी मथुरा में भ० महावीर का शुभागमन हुआ तो वहां के राजा उदितोदय ने उनका स्वागत किया और उसका राजसेठ जैन धर्म का दृढ़ उपासक था, उसने भगवान् के निकट श्रावक के व्रत धारण किये थे[4]।

गांधार देश की राजधानी तक्षशिला तथा काश्मीर में भी भ० महावीर का विहार हुआ था[5]।

तिब्बत में भी जैन धर्म प्रचार हुआ था[6]।

विदेशों में भी भ० महावीर का विहार हुआ था[7]। श्रवण बेल्गोल के मान्य पण्डिताचार्य श्री चारुकीर्त्ति जी तथा पंडित गोपालदास जी जैसे विद्वानों का कथन है कि दक्षिण भारत में

१-५ कामताप्रसाद : भ० महावीर पृ० १३४-१३५।

६. The well- known Tibetan Scholar Dr. Tucci found distinct traces of Jain religion in Tibet. —Alfred Master, I. C. S., C. I. E: Vir Nirvanday in London, (World. J. Mission Aliganj, Eta) P. 5.

७. महावीर स्मृतिग्रन्थ (आगरा) पृ० १२३, ज्ञानोदय (अप्रैल १९५१) जैन सिद्धान्त भास्कर भा० ११, पृ० १४५, जैन होस्टल मेगजीन (जनवरी १९३१) पृ० ३, जैन धर्म महत्व (सूरत) पृ० ६६-७७, इसी ग्रंथ का भा० १।

भारत पर चढ़ाई कर दी। हिन्दू राजाओं ने देश की स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिये उसके विरुद्ध मोर्चा लगाया। परन्तु उसने अपनी फौज के आगे गउओं के झुण्ड खड़े कर दिये[1]। कुटिल नदी के किनारे घमसान का युद्ध हुआ, किन्तु मालूम यह होता है कि जिस समय हिन्दू सरदार गउओं के कारण असमंजस में पड़े हुए मन्त्रणा कर रहे थे उस समय मुसलमानों ने उनको चारों तरफ से घेर कर आक्रमण कर दिया[2] जिस से हिन्दू हार गये[3]। श्रावस्ती (जिला गोण्डे के सहेट-महेट) के जैन सम्राट्[4] सुहिल देवराय से अपना देश पराधीन होता न देखा गया वह जिन मन्दिर में गये[5] और तीसरे तीर्थङ्कर श्री सम्भवनाथ जी की दिव्यमूर्ति के सम्मुख देश और धर्म की रक्षा के लिये प्रण किया कि वह अत्याचारियों को देश से निकाल कर ही जिनेन्द्र के दर्शन करेंगे। उनकी प्रतिज्ञा को सभी सैनिकों ने दुहराया[6]।

'महावीर की जय' घोषणा के साथ उन्होंने दूर से ही गउओं के झुण्ड पर तीर चला कर उनको तितर-बितर कर दिया[7]। मुसलमानों की सेना में अव्यवस्था फैल गई। कई दिनों तक घोर युद्ध हुआ। मुसलमानों के बहुत से योद्धा मारे गये। स्वयं सालार मसूद भी इस युद्ध में काम आया[8]। जैनवीर सुहिलदेव का प्रण पूरा हुआ। उन्होंने भारत मां की पवित्र भूमि का स्वाधीन ध्वज ऊँचा रक्खा[9]। मुल्ला मुहम्मद गजनवी नाम के लेखक ने जो सालारमसूद के साथ था 'तवारीखे मुहम्मदी' नाम की एक पुस्तक लिखी थी, जिसके आधार से जहांगीर के शासन काल में अब्दुल-

---

१-३. श्रावस्ती और उसके नरेश सुहिलदेवराय (वर्ल्ड जैन मिशन) पृ० ६०-६५।

४. Smith: Journal of Royal Assistic Society (1900) P. 1.

५. Hoey: Journal of the Asciatic Society, Bangal (1892) P. 84

६-९. श्रावस्ती और उसके नरेश सुहिलदेव पृ० ६५।

तरह के चालुक्यवंशी राजाओं ने हर समय जैनधर्म की प्रभावना की[1] और *Smith* के शब्दों में वे निश्चित् रूप से जैनधर्म के बड़े अनुरागी रहे[2]।

राष्ट्रकूट वंशी नरेश बड़े योद्धा वीर और चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे[3]। महाराजा **दन्तिदुर्ग द्वि०** (७४५—७५६ ई०) जैनधर्म प्रेमी थे[4]। इनके पुत्र **कृष्णराज प्र०** (७५६—७७५ ई०) पर जैन आचार्य श्री अकलङ्कदेव जी का गहरा प्रभाव था[5]। **गोविन्दराज तृ०** तो इतने योद्धा थे कि शत्रु उनके भय से कांपते थे। जिसके कारण ये 'शत्रु भयंकर' नाम से प्रसिद्ध थे[6]। ये जैन साधुओं का बड़ा पक्ष करते थे[7]। इनके समय के जैनाचार्य श्री विमलचन्द्र जो इतने महाविद्वान् थे कि इन्होंने इनके महल पर नोटिस लगा दिया था कि यदि किसी भी धर्म का विद्वान् चाहे तो मुझसे शास्त्रार्थ करले[8]। इन्होंने जैन-मुनि श्री अरिकीर्त्ति जी को जैनधर्म की प्रभावना के लिये दान दिये थे[9]। इनके पुत्र **अमोघवर्ष प्र०** (८१४—८७७ ई०) जैनधर्मी[10] और 'आदि पुराण' के लेखक जैनाचार्य श्री जिनसेन जी के शिष्य थे[11]। धवल व जयधवल आदि जैन-फिलौस्फी के प्रसिद्ध महान् ग्रन्थों की टीकाएँ इन्हीं के समय हुई थी[12]। जैनाचार्य श्री उग्रादित्य ने भी अपने 'कल्याणकारक'

१. "The Chalukayas of whatever branch or age, were consistently patrons of Jainism."—Prof. Sharma : J & Karnataka Culture. P 29.

२. "The Chakukays were without doubt great supporters of Jainism"—Smith Early Hist. of India. P. 444.

३-४. Some Historical Jain Kings & Heroes. P. 40-43.

५. Hiralal, cat. of Mss. in C. P. & Berar Int., J. & K. Culture P. 31.

६-९. EPCar. IX P. 43, Med, Jainism 36, SHJK& H 43-44

१०. Amoghavarsha was the greatest patron of Jainism and that he himself adopted the JAIN FAITH seems true"-Bom. Gag. I 88 P. 28 & Early History of Deccan. P. 95.

११-१२. Some Historical Jain Kings & Heroes P. 45-46.

जैनधर्म का प्रभाव १

श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

हम वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। हमारे घर के सामने जैन मन्दिर जी था। वहाँ त्याग का कथन हो रहा था। मुझ पर भी प्रभाव पड़ा और मैंने सारी उम्र के लिये रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। उस समय मेरी आयु दस साल की थी।

एक दिन मैं और पिता जी गाँव जा रहे थे। रास्ते में घना जङ्गल पड़ा। हम अभी बीच में ही थे कि एक शेर-शेरनी को अपनी ओर आते देखा। मैं डरा, परन्तु मेरे पिता जी ने धीरे-धीरे णमोकार मन्त्र का जाप आरम्भ कर दिया। शेर-शेरनी रास्ता काट कर चले गये। मैंने आश्चर्य से पूछा, "पिता जी! वैष्णव-धर्म के अनुयायी होते हुए जैनधर्म के मन्त्र पर इतना गहरा विश्वास"? पिता जी बोले कि इस कल्याणकारी मन्त्र ने मुझे बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बचाया है। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा रखना। मुझे जैनधर्म की सचाई का विश्वास हो गया। इसकी सचाई से प्रभावित होकर समस्त घर बार और कुटुम्ब को छोड़कर फाल्गुण सुदी सप्तमी वीर सं० २४७४ को आत्मिक कल्याण के हेतु मैंने जैनधर्म की क्षुल्लक पदवी ग्रहण करली[१]।

---

१ मेरी जीवन गाथा, गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, भदैनी घाट, बनारस।

० लिये जैन-सन्देश,

विचार-बिन्दु

बड़ी उपयोगी है

न के आध्यात्मिक सन्त श्री १०५
क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी

यह बहुत सुन्दर और बड़ी उपयोगी पुस्तक है। इसे देव नागरी में छपवाया जावे ताकि स्त्री पुरुष सब ही इससे लाभ उठा सकें।

(प्रवचन—१६-४-१९४९)

बहुत पसन्द है

रा० रा० सर सेठ हुकमचन्द जी इन्दौर को आपकी पुस्तक 'विश्वशान्ति के अग्रदूत श्री वर्द्धमान महावीर' बहुत पसन्द आई और उन्होंने मुझे आदेश दिया है कि इसकी ३० प्रतियाँ मँगा लो।

रामनाथ शास्त्री

(कोपन मनिआर्डर २३-६-५४)

VERY INTERESTING

Shri Sahu S. P. Jain

Mg. Director Sahu-Jain Ltd.

It is very interesting and full of information.

(His letter of July 14, 1954)

VALUABLE CYCLOPAEDIA

Shri K. D. Jain, M. R. A. S.

Hony. Director World Jain Mission

Let me congratulate you on the successful completion of your unique work. It has become a valuable cyclopaedia about Jainism

(His letter of July 21, 1954)

रघुनाथप्रसाद बंसल द्वारा कमल मुद्रण सदन, सहारनपुर में मुद्रित

THE VOWS ARE VERY ESSENTIAL

HON'BLE SHRI G. V. MAVALANKAR
SPEAKER LOK SABHA INDIA.

I have particularly noted the vows prescribed at page 528 and they are undoubtedly very essential to raise the moral and spiritual height of our people. The difficulty with us unfortunately, has been not the want of a proper philosophy of life, but the want of practice of our ancient philosophy. From what I have seen all these years in all walks of life, I feel the necessity of practice of the principles, which we always have on our lips.

Non-violence has to be a **creed** *of the life of everyone of us. It is difficult to make it a* **creed**. *It requires the acquisition of a good number of qualities. Unless a man sheds his fear-complex, speaks truth and looks upon others the same way in which he looks upon himself, it is not possible for him to practise non-violence; and again, mere physical non-violence is not enough. There must be non-violence in* **thoughts** *as well as in* **words** *and* **deeds**. *It is only when we begin to practise on a large scale non-violence of this type that we shall be able to realise full democracy. Mere absence of the foreigner or a machinery for election does not give us democracy in the real sense of the term. In other words, it is necessary to spiritualise our individual as well as national life.*

(His letter No. D. 1000/54 of the 25th August, 1954.)